विवेक-ज्योति

वर्ष ३८, अंक ११ नवम्बर २००० मूल्य रु. ५.००

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर (म. प्र.)

भिलाई इस्पात संयंत्र

सर्वश्रेष्ठ से भी अधिक श्रेष्ठता की ओर

"यह जानकर प्रसन्नता हुई कि भिलाई इस्पात संयंत्र ने देश के सर्वश्रेष्ठ कार्यरत एकीकृत इस्पात संयंत्र के रूप में वर्ष 1996-97 के लिये प्रधानमंत्री ट्राफी अर्जित की है। भिलाई इस्पात संयंत्र ने पाँच वर्ष में चौथी बार इस ट्राफी को जीता है। इससे संयंत्र के प्रशंसनीय निष्पादन और सर्वोच्च बने रहने के दृढ़ निश्चय की सहज पुनरावृत्ति प्रदर्शित होती है।

सर्वश्रेष्ठता सिर्फ मील का एक पत्थर है, मंजिल नहीं। आज के विश्वव्यापी आर्थिक माहौल में विश्व में सर्वश्रेष्ठ होना ही लक्ष्य होना चाहिये...."

अटल बिहारी बाजपेयी
माननीय प्रधानमंत्री

देश के सर्वश्रेष्ठ एकीकृत इस्पात संयंत्र के रूप में चौथी बार प्रधानमंत्री ट्राफी विजेता

Prime Minister's Trophy
For Best Integrated Steel Plant
1996-97

माननीय प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी बाजपेयी, श्री अरविंद पांडे, अध्यक्ष, सेल एवं श्री वि. गुजराल, प्रबंध निदेशक, भिलाई इस्पात संयंत्र को प्रधानमंत्री ट्राफी प्रदान करते हुये।

स्टील अथॉरिटी ऑफ इण्डिया लिमिटेड
भिलाई इस्पात संयंत्र

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा से अनुप्राणित

हिन्दी मासिक

नवम्बर, २०००

प्रबन्ध-सम्पादक

स्वामी सत्यरूपानन्द

सम्पादक

स्वामी विदेहात्मानन्द

वर्ष ३८
अंक ११

वार्षिक ५०/- एक प्रति ५/-

आजीवन (२५ वर्षों के लिए) – ७००/-

रामकृष्ण मिशन
विवेकानन्द आश्रम
रायपुर – ४९२ ००१ (म. प्र.)

दूरभाष : २२५२६९, ६३६९५९, २२४११९

अनुक्रमणिका

मुद्रक : संयोग आफसेट प्रा. लि., बजरंगनगर, रायपुर (फोन : ५४६६०३)

श्रीरामकृष्ण शरणम्

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम,
रायपुर - ४९२ ००१ (म. प्र.)

सादर सनम्र निवेदन

आत्मीय बन्धु/भगिनी,

स्वामी विवेकानन्द, अपनी जन्मभूमि कलकत्ता के अतिरिक्त सम्पूर्ण पृथिवी में सबसे अधिक समय तक लगातार रहे हों, ऐसा स्थान है, तो वह है 'रायपुर नगर'। रायपुर में सन् १८७७ से १८७९ में अपनी किशोर अवस्था में स्वामीजी दो वर्ष रहे थे। उन्हीं की पुण्यस्मृति में रायपुर आश्रम का नामकरण रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम किया गया है।

यह आश्रम गत लगभग ४० वर्षों से नर-नारायण की सेवा में समर्पित है। आश्रम में निम्नलिखित सेवा विभाग हैं –

(१) धर्मार्थ औषधालय – नेत्ररोग विभाग, स्त्रीरोग विभाग, दन्तरोग विभाग, शिशुरोग विभाग, एक्स-रे विभाग, मनोरोग विभाग, हृदयरोग विभाग, पैथोलॉजी विभाग, नाक -कान-गला विभाग। (२) फिजियोथेरेपी (३) होमियोपैथी (४) ग्रन्थालय – (अ) विद्यार्थियों के लिये पाठ्य-पुस्तक विभाग (ब) सामान्य ग्रन्थ विभाग (स) पत्र-पत्रिकाओं सहित निःशुल्क वाचनालय (५) विद्यार्थियों के लिये निःशुल्क छात्रावास (६) श्रीरामकृष्ण मन्दिर (७) साधु-सेवा (८) गोशाला (९) स्कूल के गरीब छात्रों हेतु निःशुल्क कोचिंग क्लास।

इन वर्षों में आश्रम की सेवा गतिविधियों में पर्याप्त वृद्धि हो गई, परन्तु उसकी तुलना में आर्थिक अभाव के कारण आश्रम के भवनों आदि का विस्तार नहीं किया जा सका है। इसलिये अब आश्रम के कुछ विभागों में स्थान-विस्तार की नितान्त आवश्यकता है। उसी प्रकार आश्रम के पुराने भवनों की मरम्मत, रंग-रोगन आदि भी कराने की अत्यन्त आवश्यकता है।

आश्रम में दो प्रकार के सेवक हैं – (१) साधु-ब्रह्मचारी (२) वेतन-भोगी

साधु-ब्रह्मचारियों के भरण-पोषण तथा वेतनभोगी सेवकों के वेतनादि के लिये भी आश्रम को स्थायी कोष की आवश्यकता है। आश्रम के सेवा-कार्यों तथा सेवकों, साधु-ब्रह्मचारियों आदि का भरण-पोषण आप जैसे उदार बन्धु-भगिनियों के दान से ही चलता है।

अतः आपसे सादर अनुरोध है कि निम्नलिखित मदों में उदारतापूर्वक दान देकर अनुगृहीत करें।

बूँद बूँद से ही घड़ा भरता है। आपके द्वारा दिया गया सभी दान हमारे लिये महान है तथा हमारी योजनाओं में परम सहायक होगा।

(१) सत्-साहित्य प्रदर्शन तथा विक्रय विभाग भवन तथा उपकरण (दस लाख) १०,००,०००/- रु.

(२) सेवक निवास भवन तथा उपकरण (सात लाख) ७,००,०००/- रु.

(३) गोशाला निर्माण तथा गोबर गैस संयंत्र आदि (दस लाख) १०,००,०००/- रु.

(४) मन्दिर के सामने मुख्य द्वार का निर्माण तथा द्वार से मन्दिर तक पथ निर्माण (तीन लाख) ३,००,०००/- रु.

(५) पुराने भवनों की मरम्मत तथा रंग-रोगन आदि (दस लाख) १०,००,०००/- रु.

(६) मन्दिर का फूल-उद्यान, जल संसाधन व्यवस्था तथा इनका रख-रखाव एवं विद्युत खर्च (दस लाख) १०,००,०००/- रु.

(७) औषधालय में औषधि आदि का व्यय तथा फिजियोथेरेपि यंत्रों का रख-रखाव, विद्युत व्यय, कर्मचारियों का मानदेय आदि (पच्चीस लाख) २५,००,०००/- रु.

स्थायी कोष के लिये अपेक्षित कुल राशि (रू. एक करोड़ मात्र) १,००,००,०००/- रु.

नर-नारायण की सेवा में आपका सहयोगी,

(स्वामी सत्यरूपानन्द)
सचिव

चेक/ड्राफ्ट कृपया रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के नाम पर लिखें।

रामकृष्ण मिशन को दिये गये दान में ८०जी आयकर अधिनियम के अन्तर्गत छूट मिलती है।

नीति-शतकम्

क्षान्तिश्चेत् कवचेन किं किमरिभिः क्रोधोऽस्ति चेद्देहिनां
ज्ञातिश्चेदनलेन किं यदि सुहृद्दिव्यौषधैः किं फलम् ।
किं सर्पैर्यदि दुर्जनाः किमु धनैर्विद्यानवद्या यदि
व्रीडा चेत् किमु भूषणैः सुकविता यद्यस्ति राज्येन किम् ।।२१।।

अन्वयः – देहिनां क्षान्तिः चेत् कवचेन किं फलम्? क्रोध अस्ति चेत् अरिभिः किम्? ज्ञातिः चेत् अनलेन किम्? यदि सुहृत् दिव्यौषधैः किम्? यदि दुर्जनाः सर्पैः किम्? यदि अनवद्या विद्या धनैः किमु? व्रीडा चेत् भूषणैः किमु? यदि सुकविता अस्ति राज्येन किम्?

भावार्थ – मनुष्य के पास यदि क्षमा है, तो फिर उसे कवच की क्या जरूरत? यदि क्रोध है तो उसे शत्रुओं की क्या जरूरत? यदि सगे हैं तो (दग्ध करने को) अग्नि की क्या जरूरत? यदि मित्र हैं तो सिद्ध औषधियों की क्या जरूरत? यदि दुष्ट हैं तो साँप की क्या जरूरत? यदि निर्दोष विद्या है तो धन की क्या जरूरत? यदि लज्जा है तो आभूषणों की क्या जरूरत? यदि कवित्व है तो फिर राजत्व की क्या जरूरत?

दक्षिण्यं स्वजने दया परिजने शाठ्यं सदा दुर्जने
प्रीतिः साधुजने नयो नृपजने विद्वज्जने चार्जवम् ।
शौर्यं शत्रुजने क्षमा गुरुजने कान्ताजने धृष्टता
ये चैवं पुरुषाः कलासु कुशलास्तेष्वेव लोकस्थितिः ।।२२।।

अन्वयः – स्वजने दाक्षिण्यम्, परिजने दया, दुर्जने सदा शाठ्यम्, साधुजने प्रीतिः, नृपजने नयः, च विद्वज्जने आर्जवम्, शत्रुजने शौर्यम्, गुरुजने क्षमा, कान्ताजने धृष्टता, एवं ये च पुरुषाः कलासु कुशलाः, तेषु एव लोकस्थितिः ।

भावार्थ – जो लोग अपनों के प्रति उदारता, सेवकों के प्रति दया, दुर्जनों के प्रति सदैव दुष्टता, सज्जनों के प्रति प्रेम, राजा के प्रति नीति, विद्वानों के प्रति सरलता, शत्रुओं के प्रति शौर्य, गुरुजनों के परि सहिष्णुता, स्त्रियों के प्रति ढिठाई की कलाओं में कुशल हैं, उन्हीं में लोक-मर्यादा निहित रहती है ।

– भर्तृहरि

मातृ-वन्दना

– १ –

(शिवरंजनी-कहरवा)

सारदे, वीणा बजाओ।
नित्य नव संगीत से भवताप-दुख-पीड़ा मिटाओ ।।

आ विराजो हृदि कमल पर, छेड़ती रहना मधुर स्वर,
स्नेहमय निज दृष्टि से, मम ज्ञान का दीपक जलाओ ।।

सुख समाहित हो सकल जन, तुष्ट सबके प्राण जीवन,
अब जगत् में द्वन्द्व ना हो, शान्ति की सरिता बहाओ ।।

भव प्रपंचों में हि अनुक्षण, रत रहा करता सतत मन,
अब कृपा करके जननि, इसको स्वचरणों में लगाओ ।।

– २ –

(शिवरंजनी-कहरवा)

आकुल अन्तर तुझे पुकारूँ, आओ माँ श्यामा ।
राह देखते पल युग लगते, अब तरसाओ ना ।।

दिशाहीन तव माया वन में,
भटक गया हूँ जग जीवन में,
लोभ-मोह रिपुओं के भय से, मुझे बचाओ माँ ।।

माँ श्मशान तुझको अति प्रिय है,
इक श्मशान मेरा भी हिय है,
निशिदिन इसमें तप-विराग का,
धू धू करके अनल दहकता,

जला चुका हूँ सकल वासना,
तो भी जननी तू आयी ना,
तेरे बिन यह जीवन सूना, अब तो आ जा माँ ।।

– विदेह

प्राच्य और पाश्चात्य दृष्टिकोण

स्वामी विवेकानन्द

(रामकृष्ण मिशन के एक वरिष्ठ संन्यासी स्वामी निर्वेदानन्द जी ने स्वामी विवेकानन्द की अंग्रेजी ग्रंथावली में यत्र-तत्र बिखरे भारत तथा उसकी समस्याओं से सम्बन्धित विचारों का एक संकलन बनाया था। यह संकलन स्वामीजी के भारत-विषयक विचारों को समझने में काफी उपयोगी है तथा इसी कारण अत्यन्त लोकप्रिय भी हुआ है। 'विवेक-ज्योति' के पाठकों के लिए भी इसका हिन्दी रूपान्तरण प्रस्तुत किया जा रहा है। – सं.)

प्राच्य और पाश्चात्य दृष्टिकोणों में भेद

एशिया की आवाज सदैव धर्म की आवाज रही है और यूरोप सदैव राजनीति की भाषा बोलता रहा है। अपने अपने क्षेत्र में दोनों ही महान् हैं। यूरोप की यह बोली प्राचीन यूनानी विचारों की प्रतिध्वनि मात्र है। यूनानी अपने समाज को ही सब कुछ और सर्वोच्च मानते थे। उनकी दृष्टि में अन्य सभी बर्बर तथा असभ्य थे, उनके सिवाय इतरों को जीवित रहने का अधिकार नहीं था। उनके मतानुसार वे स्वयं जो करते थे, वही कर्तव्य था, वही श्रेष्ठ था; संसार में अन्य जो कुछ है, वह गलत है और उसको नष्ट कर देना चाहिए। अत: वे अपनी भावनाओं में प्रखर मानवतावादी, प्रखर प्रकृतिपरक और प्रखर कलाप्रिय हैं। यूनानी पूर्णतया इसी लोक में जीता है। वह स्वप्न देखना नहीं चाहता। उसका काव्य भी व्यावहारिक है। उसके देवी-देवता केवल मानव प्राणी ही नहीं, अपितु हमारी ही तरह सभी मानवीय आवेगों और भावनाओं से युक्त प्रखर मानव हैं। यूनानी सौन्दर्य से प्रेम करता है, परन्तु वह सौन्दर्य बाह्य प्रकृति का – पर्वतों, शुभ्र हिमराशि तथा पुष्पों का है; रूप तथा आकार का है; मानवीय मुख और प्राय: उसके अंगों का है – यूनानी इसी को पसन्द करते हैं। यही यूनान परवर्ती यूरोप का आचार्य था और इसीलिए आज के यूरोप की वाणी यूनान की वाणी की एक प्रतिध्वनि मात्र है।

एशिया की आवाज इंससे भिन्न है। एशियावासियों की प्रकृति कुछ और है। एशियावासियों का सौन्दर्य एवं उदात्त के प्रति प्रेम बिल्कुल भिन्न दिशा में विकसित हुआ। बहिर्दृष्टि त्यागकर वे अन्तर्दृष्टि-परायण हो गये। उनमें भी प्राकृतिक सौन्दर्य के लिए वही पिपासा है, शक्ति के लिए वही भूख है, यूनानियों के समान उनमें भी इतरों को असभ्य तथा बर्बर समझने की प्रवृत्ति है, उन्नति की आकांक्षा है, किन्तु उनके इन भावों की परिधि विशाल और विस्तृत है। एशिया में आज भी जातियों का संघटन जन्म, वर्ण या भाषा के भेद पर आधारित नही है। जाति का निर्णायक उसका धर्म है। इस प्रकार सब ईसाइयों की जाति एक होगी, सब मुसलमान एक ही जाति के होंगे और सब बौद्ध तथा हिन्दू भी एक एक जाति के होंगे। चीन-निवासी एक बौद्ध फारस में रहने वाले दूसरे बौद्ध को अपना भाई मानता है, अपनी ही जाति का अंग समझता है – केवल इसीलिए कि उन दोनों का धर्म है। धर्म ही मानव-जाति को एक सूत्र में बाँधता है, वही एक सम्मिलन-भूमि हैं; इसी कारण एशियावासी – ये प्राच्य निवासी जन्मजात कल्पनाप्रिय होते हैं, स्वप्नद्रष्टा होते हैं। जलप्रपातों पर नाचती हुई लहरियाँ, खगकुल का कलरव, सूर्य, चन्द्र, नक्षत्रों तथा निसर्ग आदि का सौन्दर्य उन्हें मनोरम प्रतीत होता है, इसमें कोई सन्देह नहीं; परन्तु प्राच्य मन के लिए यह पर्याप्त नहीं है। वह इनके परे का स्वप्न देखना चाहता है। वर्तमान के परे जाना चाहता है। वर्तमान उसके लिए मानो अस्तित्वहीन है।

यह पूरब युगों से कई जातियों के जीवन का रंगमंच रहा है। नियति-चक्र के उसने न जाने कितने परिवर्तन देखे हैं। उसने एक के बाद दूसरे राज्य को, एक साम्राज्य के बाद दूसरे साम्राज्य को प्रकट होते, ऊपर उठते और फिर गिरकर मिट्टी में मिलते देखा है; मानवीय शक्ति, प्रभुत्व, ऐश्वर्य और धनराशि को अपने कदमों में लुढ़कते और न्यौछावर होते देखा है। अनन्त विद्या, असीम शक्ति तथा अनेकानेक साम्राज्यों की विशाल समाधि-भूमि – यह है प्राच्य भूमि का परिचय। कोई आश्चर्य नहीं, यदि प्राची के निवासी इहलोक की वस्तुओं को तिरस्कार की दृष्टि से देखें और स्वभावत: किसी ऐसी वस्तु के दर्शन की चिर अभिलाषा उनके हृदय में अंकुरित हो जाय, जो अपरिवर्तनशील हो, जो अविनाशी हो, जो इस विनाशवान एवं दु:खपूर्ण जगत् में अमर तथा नित्य आनन्दपूर्ण हो। प्राची के महापुरुष इन आदर्शों की घोषणा करते कभी नहीं थकते – और जहाँ तक महापुरुषों तथा अवतारों का प्रश्न है, तुम्हें स्मरण होगा कि बिना किसी अपवाद के उनमें से प्रत्येक प्राच्यदेशीय है।

ऐसे व्यक्ति, जिनकी आँखें नश्वर वस्तुओं की ऊपरी तड़क-भड़क से चौंधिया गयी हैं, जिनका सारा जीवन खाने-पीने तथा मौज करने के निमित्त ही समर्पित हो चुका है, जिनकी सम्पति का आदर्श केवल भूखण्ड तथा स्वर्ण ही है, जिनके सुख का आदर्श केवल इन्द्रियजन्य सुख ही है, जिनका ईश्वर केवल धन ही है, जिनके जीवन का ध्येय ऐश-आराम करना तथा मर जाना ही है, जिनकी बुद्धि दूरदर्शी नहीं है, जो सर्वदा इन्द्रियभोग्य विषयों के बीच में पड़े रहते हैं, तथा जो इनसे

उच्चतर बातें सोच ही नहीं सकते; वे यदि भारत में जायँ, तो उन्हें वहाँ क्या दिखलायी देगा? – प्रत्येक स्थान पर निर्धनता, जघन्यता, अन्धविश्वास, अज्ञान तथा बीभत्सता ही । इसका कारण क्या है? कारण यह है कि उनकी समझ में सभ्यता का अर्थ वेषभूषा, शिक्षण तथा सामाजिक शिष्टाचार मात्र है । पश्चात्य जाति ने अपनी ऐहिक उन्नति के लिए सब प्रकार से यत्न किया है, परन्तु भारत ने वैसा नहीं किया ।

यदि हम मनुष्य जाति के सारे इतिहास को देखें, तो हम पायेंगे कि सारे संसार में केवल भारत में ही ऐसी जाति है, जो अपने देश की सीमा के बाहर कभी किसी दूसरे देश को परास्त करने के लिए नहीं गयी, जिसने दूसरे की सम्पत्ति को कभी प्राप्त करने ही इच्छा नहीं की; और यदि कहा जाय, तो उसका 'अपराध' केवल यही था कि उसकी भूमि बड़ी उपजाऊ थी तथा उसने अपने हाथों कड़ी मेहनत करके धन इकट्ठा किया और इस प्रकार दूसरे राष्ट्रों को यह प्रलोभन दिया कि वे आकर उसके यहाँ लूट-मार करें । परन्तु फिर भी वह लुट जाने पर तथा 'जंगली' कही जाने पर भी सन्तुष्ट है और उसके बदले में संसार में ईश्वर विषयक ज्ञान का प्रचार करना चाहती है; मानव प्रकृति के गुह्य रहस्य को संसार के सम्मुख स्पष्ट रूप से प्रस्तुत करना चाहती है तथा उस पर्दे को हटा देना चाहती है, जो मनुष्य के असली स्वरूप को छिपाये हुए है । वह जानती है कि यह सब स्वप्न है – वह जानती है कि इस जड़ के पीछे मनुष्य का प्रकृत ब्रह्मभाव विराजमान है, जिसे न तो कोई पाप पतित कर सकता है, न काम कलंकित कर सकता है, न आग जला सकती है और न जल ही गीला कर सकता है, जो आँच से सूख नहीं सकता और न जिसे काल अपने गाल में ही डाल सकता है । उसके लिए मनुष्य का यह असली स्वरूप उतना ही वास्तविक है, जितना किसी पाश्चात्य जाति के लिए इन्द्रियगम्य जड़ पदार्थ ।

यह बात इसी देश में है कि यदि कोई व्यक्ति किसी को यह सुझा देता है कि यह संसार कल्पना मात्र है, केवल स्वप्नवत है, तो वह मनुष्य अपनी वेश-भूषा, धन-सम्पत्ति आदि सब त्यागकर यह दिखा देता है कि वह जो कुछ विश्वास करता है तथा मन से सोचता है, वह सत्य है । यह बात यहीं देखने को मिलती है कि जब मनुष्य को इस बात का ज्ञान हो जाता है कि यह जीवन अनन्त है, तो वह एक नदी के किनारे जाकर बैठ जाता है और अपने शरीर को कुछ भी न समझकर उसका त्याग इस प्रकार से कर देना चाहता है, जैसे हम-तुम एक घास-फूस का तिनका छोड़ देते हैं । इसी में उनका शूरत्व है कि वे मृत्यु का स्वागत एक भाई के समान करते हैं, क्योंकि उनका यह दृढ़ विश्वास है कि मृत्यु वास्तव में उनके लिए है ही नहीं । इसी में वह शक्ति है, जिसने सैकड़ों वर्षो के विदेशियों का आक्रमण तथा अत्याचारों में भी इन्हें अटल रखा । वह राष्ट्र आज भी है और उस राष्ट्र में घोर संकट के दिनों में भी आत्मज्ञानी महापुरुषों का अवतार लेना कभी बन्द नहीं हुआ है । जिस प्रकार पाश्चात्य देशों में बड़े बड़े राजनीतिज्ञों तथा वैज्ञानिकों का जन्म होता है, उसी प्रकार एशिया में महान् आत्मज्ञानी व्यक्ति जन्म लेते हैं ।

पाश्चात्य देशों के निवासी भी अपने कार्यक्षेत्र में – सामरिक, राजनीतिक कार्यों के संचालन में अपनी दक्षता तथा व्यावहारिकता का परिचय देते हैं । शायद, पूर्व का निवासी इन सब कार्यों मे उतना निपुण नहीं है, परन्तु उसने धर्म के क्षेत्र में अपनी कुशलता का परिचय दिया है । ... जैसे तुम शूरता से एक तोप के मुँह के सामने उड़ जाने के लिए कूद पड़ते हो तथा जैसे देशभक्ति से प्रेरित हो उत्साह के साथ अपने देश के लिए प्राण भी दे देते हो, उसी प्रकार भारतवासी ईश्वर के नाम पर अपना सर्वस्व अर्पण करने में शूर होते हैं । ... यहाँ यदि आज कोई किसी दर्शन का प्रचार करता है, तो देखने में आता है कि कल ही सैकड़ों नर-नारी अपने जीवन में उसकी उपलब्धि करने का जी-तोड़ प्रयत्न कर रहे हैं । यदि कोई व्यक्ति उपदेश करता है कि एक पैर खड़े रहने से मुक्ति सम्भव है, तो उसे अल्पकाल में ही एक पैर पर खड़े रहनेवाले सैकड़ों अनुयायी मिल जायेंगे । शायद तुम इसे हास्यास्पद समझते हो, परन्तु स्मरण रखो इसके पीछे उनके जीवन का दर्शन तथा चरम व्यावहारिकता विद्यमान है ।

पाश्चात्य देशों में मुक्ति के जो विविध उपाय निर्दिष्ट किये जाते हैं, वे केवल बौद्धिक कलाबाजियाँ मात्र हैं और कभी भी उन्हें कार्यरूप में परिणत करने का प्रयत्न नहीं किया जाता । पश्चिम में जो प्रचारक अच्छा वक्ता है, वही श्रेष्ठ धर्माचार्य मान लिया जाता है । ... उच्चतर आध्यात्मिकता को हृदयंगम करने में अभी पाश्चात्य देशवासियों को बहुत समय लगेगा । अभी उनके लिए पौण्ड, शिलिंग और पेंस ही सब कुछ हैं । यदि किसी धर्म के पालन से धन की प्राप्ति हो, रोग दूर होते हों, सौन्दर्य तथा दीर्घ जीवन पाने की सम्भावना हो, तभी वे उस ओर झुकेंगे, अन्यथा नहीं । ... जैसे प्रतिदिन के कर्म-जीवन में विलासिता को बनाये रखना पाश्चात्य आदर्श है, वैसे ही हमारा आदर्श है कर्म-जीवन में सर्वोच्च कोटि के आध्यात्मिक भाव की रक्षा करना । हम इसके द्वारा यही प्रदर्शित करना चाहते हैं कि धर्म केवल वाग्जाल नहीं है, बल्कि इसी जीवन में धर्म को पूर्ण रूप से कार्यान्वित किया जा सकता है ।

विकास के लिए पहले स्वाधीनता चाहिए । हमारे पूर्वजों ने आत्मा को स्वाधीनता दी थी, इसीलिए धर्म में उत्तरोत्तर वृद्धि तथा विकास हुआ; पर देह को उन्होंने सैकड़ों बन्धनों के फेर में डाल दिया, बस, इसी से समाज का विकास रुक गया ।

पाश्चात्य देशों का हाल इसके ठीक विपरीत है । समाज में बहुत स्वाधीनता है, धर्म में बिल्कुल नहीं । पाश्चात्य देश थोड़ी भी धार्मिक उन्नति समाजिक उन्नति के माध्यम से करना चाहते हैं, परन्तु प्राच्य देश थोड़ी-सी भी समाजिक शक्ति की प्राप्ति धर्म के द्वारा ही करना चाहते हैं ।

केवल आध्यात्मिक ज्ञान ही ऐसा है, जो हमारे दु:खों को सदा के लिए नष्ट कर सकता है; अन्य किसी प्रकार के ज्ञान से आवश्यकताओं की पूर्ति केवल अल्प समय के लिए ही होती है । केवल आध्यात्मिक ज्ञान द्वारा ही हमारे दुख-दैन्य का सदा के लिए अन्त हो सकता है । ... नि:सन्देह शारीरिक शक्ति के द्वारा अनेक महान् कार्य सम्पन्न होते हैं और इसी प्रकार मस्तिष्क की अभिव्यक्ति भी अद्‌भुत है, जिससे विज्ञान के सहारे तरह तरह की मशीनों तथा यन्त्रों का निर्माण होता है, तो भी दुनिया पर आत्मा का जितना जबरदस्त प्रभाव पड़ता है, उतना अन्य किसी का नहीं ।

मशीनों ने मनुष्य जाति को कभी सुखी नहीं बनाया और न बना सकेंगी । जो हमें इस बात का विश्वास दिलाने का यत्न कर रहा है, वह यही कहेगा कि सुख मशीनों में ही है, परन्तु यह सदा मन में ही है । जो व्यक्ति अपने मन का स्वामी है, केवल वही सुखी हो सकता हैं – दूसरा नहीं । और आखिर यह मशीन की शक्ति है ही क्या? यदि कोई मनुष्य बिजली के तार द्वारा विद्युत-प्रवाह भेज सकता है, तो उसे हम एक बड़ा तथा बुद्धिमान मनुष्य क्यों कहें? क्या प्रकृति उससे कई लाख गुना कार्य प्रत्येक क्षण नहीं करती है? अत: हम प्रकृति के ही चरणो में गिरकर उसी की पूजा क्यों न करें? यदि तुम्हारी शक्ति सम्पूर्ण विश्व में फैल गयी है और यदि तुमने विश्व के प्रत्येक परमाणु को वश में कर लिया है, तो भी क्या? इससे तो तुम सुखी नहीं हो सकते । तुम सुखी तभी हो सकते हो, जब तुम स्वयं को जीत लो ।

यह सत्य है कि मनुष्य का जन्म प्रकृति पर विजय प्राप्त करने के लिए ही हुआ है, परन्तु प्रकृति शब्द से पाश्चात्य जाति केवल भौतिक या बाह्य प्रकृति ही समझती है । यह सत्य है कि पहाड़ों, समुद्रों, नदियों तथा अपनी नाना प्रकार की अनन्त शक्तियों द्वारा समन्वित यह बाह्य प्रकृति अत्यन्त महान् है, परन्तु फिर भी मनुष्य की अन्त:प्रकृति इससे भी महत्तर है – यह सूर्य, चन्द्र तथा नक्षत्रादि से भी उच्च है, हमारी इस पृथ्वी से – समग्र जड़ जगत् से भी श्रेष्ठ है और हमारे इन छोटे छोटे जीवनो से भी अतीत है और यह हमारे अनुसन्धान के लिए एक विशिष्ट क्षेत्र है । जिस तरह पाश्चात्य जाति ने बहिर्जगत् की गवेषणा में श्रेष्ठत्व लाभ किया है, उसी तरह प्राच्य ने अन्तर्जगत् की गवेषणा में ।

मानवीय विकास के लिए दोनों आवश्यक

पाश्चात्य के निकट इन्द्रिय-ग्राह्य जगत् जितना सत्य है, प्राच्य के लिए आध्यात्मिक जगत् भी उतना ही सत्य है । प्राच्य जो कुछ चाहता है या जिसकी वह आशा करता है तथा जो कुछ जीवन को सत्य बनाता है – वह सब उसे आध्यात्मिक राज्य में मिल जाता है । पाश्चात्य के लिए प्राच्य स्वप्न-सृष्टि में ही विचरण करनेवाला दिखता है तथा प्राच्य भी पाश्चात्य को वैसा ही देखता है और सोचता है कि यह तो केवल नाशवान खिलौने से ही खेल रहा है और यह विचार करके हँसता है कि बड़े-बूढ़े पुरुष तथा स्त्रियाँ एक मुट्ठी भर ऐहिक वस्तु के सम्बन्ध में, जिसको कि आगे-पीछे उन्हें छोड़ना ही पड़ेगा, कितना तिल का ताड़ बना रहे हैं । परन्तु प्राच्य आदर्श मानव-जाति की उन्नति के लिए उतना ही आवश्यक है जितना कि पाश्चात्य आदर्श – और मैं सोचता हूँ कि शायद अधिक ही ।

अत: यह ठीक ही है कि जब कभी आध्यात्मिक सामंजस्य की आवश्यकता होती है, तो उसका आरम्भ प्राच्य से ही होता है । साथ-ही-साथ यह भी ठीक है कि जब कभी प्राच्य को मशीन बनाने के सम्बन्ध में सीखना हो, तो वह पाश्चात्य के पास ही बैठकर सीखे । परन्तु यदि पाश्चात्य ईश्वर, आत्मा तथा विश्व के रहस्य सम्बन्धी बातों को जानना चाहे, तो उसे प्राच्य के चरणों के समीप ही आना चाहिए ।

हमारा यह संसार श्रम-विभाजन की प्रणाली पर अवलम्बित है । यह कहना व्यर्थ है कि एक ही मनुष्य प्रत्येक वस्तु का अधिकारी होगा, परन्तु फिर भी एक बच्चे के समान हम कैसे अनजान हैं! अज्ञानवश एक बच्चा यही सोचता है कि समस्त संसार में वांछनीय वस्तु केवल उसकी गुड़िया ही है । इसी प्रकार एक जाति जो भौतिक शक्ति में श्रेष्ठ है, सोचती है कि इस संसार में यदि कोई वस्तु प्राप्त करने योग्य है, तो वह भौतिक शक्ति ही है तथा उन्नति तथा सभ्यता का अर्थ इसके अतिरिक्त दूसरा कुछ है ही नहीं और यदि कुछ जातियाँ ऐसी हैं, जो इसकी परवाह नहीं करतीं तथा जिनके पास यह शक्ति नहीं है, तो वे टिकने योग्य नहीं है – उनका सारा अस्तित्व ही सर्वथा निरर्थक है । परन्तु दूसरी ओर एक जाति के विचार हो सकते हैं कि केवल भौतिक सभ्यता ही नितान्त निरर्थक है और ऐसी वाणी प्राच्य देश से ही उठी, जिसने एक समय सारे संसार को यह बताया था कि किसी मनुष्य के पास यदि संसार की सारी सम्पत्ति है, परन्तु आध्यात्मिक शक्ति नहीं, तो वह सब किसी काम का नहीं । यही भाव प्राच्य का है और इसके विरुद्ध दूसरा पाश्चात्य का । ये दोनों ही भाव महत्वपूर्ण तथा गौरवशाली हैं । वर्तमान सामंजस्य इन दोनों आदर्शों का समन्वय तथा मिश्रण स्वरूप होगा ।

भारतीय संस्कृति का प्रचार

राष्ट्रीय जीवन – प्रबुद्ध तथा प्राणवन्त राष्ट्रीय जीवन के लिए बश एक शर्त है कि भारतीय विचार विश्व पर विजय प्राप्त करें। एक बार फिर भारतीय आध्यात्मिक और दार्शनिक विचारों की पूरे संसार पर विजय होगी। जगत् में बड़ी बड़ी विजयी जातियाँ हो चुकी हैं, हम भी महान् विजेता रह चुके हैं। हमारी विजय की कथा को भारत के महान् सम्राट् अशोक ने धर्म तथा आध्यात्मिकता की ही विजय बताया है। एक बार फिर भारत को जगत् पर विजय प्राप्त करना होगा।

लोग हर रोज तुमसे कहेंगे कि पहले अपने घर को सँभालो, बाद में विदेशों में प्रचार करना। पर मैं तुम लोगों से स्पष्ट शब्दों में कह देता हूँ कि तुम सबसे अच्छा काम तभी करते हो, जब दूसरों के लिए करते हो। अपने लिए सबसे अच्छा काम तुमने तभी किया, जब तुमने औरों के लिए काम किया; समुद्रों के उस पार विदेशी भाषाओं में अपने विचारों का प्रचार करने का प्रयत्न किया।

यदि विदेशी आकर इस देश को अपनी सेनाओं से प्लावित कर दें, तो भी कुछ परवाह नहीं। उठो भारत, तुम अपनी आध्यात्मिकता के द्वारा जगत् पर विजय प्राप्त करो! जैसा कि इसी देश में पहले-पहल प्रचार किया गया था – घृणा से घृणा पर विजय नहीं पाया जा सकता, प्रेम ही घृणा को जीत सकेगा – हमें भी वैसा ही करना पड़ेगा। भौतिकतावाद तथा उससे उत्पन्न क्लेश भौतिकतावाद से कभी दूर नहीं हो सकते। जब एक सेना दूसरी सेना पर विजय प्राप्त करने की चेष्टा करती है, तो वह मानवजाति को पशु बना देती है और इस प्रकार वह पशुओं की संख्या बढ़ा देती है। आध्यात्मिकता पाश्चात्य देशों पर अवश्य ही विजय प्राप्त करेगी।

धीरे धीरे पाश्चात्य देशवासी यह अनुभव कर रहे हैं कि उन्हें राष्ट्र के रूप में बने रहने के लिए आध्यात्मिकता की जरूरत है। वे इसकी प्रतीक्षा कर रहे हैं; चाव से इसकी बाट जोह रहे हैं। इसकी पूर्ति कहाँ से होगी? वे लोग कहाँ हैं, जो भारतीय महर्षियों के उपदेश जगत् के सब देशों में पहुँचाने के लिए तैयार हों? कहाँ हैं वे लोग, जो इसलिए सब कुछ छोड़ने को तैयार हों, ताकि ये कल्याणकर उपदेश संसार के कोने कोने तक फैल जायँ? सत्य के प्रचार हेतु ऐसे ही वीरहृदय लोगों की आवश्यकता है। वेदान्त के महासत्यों को फैलाने के लिए ऐसे वीर कर्मियों को देश के बाहर जाना चाहिए।

जगत् को इसकी चाह है, इसके बिना जगत् नष्ट हो जायगा। सारा पाश्चात्य जगत् मानो एक ज्वालामुखी पर बैठा है, जो कल ही फूटकर उसे चूर चूर कर सकता है। उन्होंने सारी दुनिया छान डाली, पर उन्हें तनिक भी शान्ति नहीं मिली है। उन्होंने इन्द्रिय-सुख का प्याला पीकर खाली कर डाला, तथापि इससे उन्हें तृप्ति नहीं मिली है। भारत के धार्मिक विचारों को पाश्चात्य देशों की नस नस में भर देने का यही समय है।

इसलिए हमें भारत के बाहर जाना ही होगा। हमारी आध्यात्मिकता के बदले में वे जो कुछ दें, वही हमें लेना होगा। चेतन-राज्य के अपूर्व तत्त्व-समूहों के बदले हम जड़-राज्य के अद्भुत तत्त्वों को प्राप्त करेंगे। चिर काल तक शिष्य रहने से हमारा काम न होगा, हमें आचार्य भी होना होगा। सम-भाव के बिना मित्रता सम्भव नहीं। और जब एक पक्ष सदा ही आचार्य का आसन पाता रहता है और दूसरा पक्ष सदा ही उसके पदप्रान्त में बैठकर शिक्षा ग्रहण किया करता है, तब दोनों में कभी भी सम-भाव की स्थापना नहीं हो सकती। यदि तुम्हारी अंग्रेज और अमरीकी जाति से सम-भाव रखने की इच्छा हो, तो जिस तरह तुम्हें उनसे शिक्षा प्राप्त करनी है, उसी तरह तुम्हें उनको शिक्षा भी देनी होगी और अब भी कितनी ही शताब्दियों तक संसार को शिक्षा देने की सामग्री तुम्हारे पास यथेष्ट है।

साथ ही हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि आध्यात्मिक विचारों की विश्व-विजय से मेरा मतलब अपने जीवनदायी सिद्धान्तों के प्रचार से है, न कि उन सैकड़ों अन्धविश्वासों से, जिन्हें हम सदियों से अपने सीने से लगाते आये हैं। इनको तो इस भारत-भूमि से भी उखाड़कर दूर फेंक देना चाहिए, ताकि वे सदा के लिए नष्ट हो जायँ।

इस प्रकार हम लोग वेदान्त-धर्म के गूढ़ रहस्य पाश्चात्य जगत् में प्रचार करके उन महा-शक्तिशाली राष्ट्रों की श्रद्धा और सहानुभूति प्राप्त करेंगे और आध्यात्मिक विषयों में सर्वदा उनके गुरु-स्थानीय बने रहेंगे। दूसरी ओर वे अन्य ऐहिक विषयों में हमारे गुरु बने रहेंगे। जिस दिन भारतवासी धर्मशिक्षा के लिए पाश्चात्यों के पदचिह्नों पर चलेंगे, उसी दिन इस अधःपतित जाति का जातित्व सदा के लिए नष्ट हो जायेगा।

'हमें यह दे दो, हमें वह दे दो' – ऐसा कहकर आन्दोलन करने से सफलता प्राप्त नहीं होगी। वरन् उपरोक्त आदान-प्रदान के फलस्वरूप जब दोनों पक्षों में पारस्परिक श्रद्धा और सहानुभूति का आकर्षण पैदा होगा, तब अधिक चिल्लाने की आवश्यकता ही नहीं रहेगी। वे स्वयं ही हमारे लिए सब कुछ कर देंगे। मेरा विश्वास है कि वेदान्त-धर्म की चर्चा और वेदान्त का सर्वत्र प्रचार होने से हमारा तथा उनका – दोनों का ही विशेष लाभ होगा। इसके सामने, मेरी समझ में राजनीतिक चर्चा निम्न स्तर का उपाय है। अपने इस विश्वास को कार्य में परिणत करने के लिए मैं अपने प्राण तक दे दूँगा।

❖ (समाप्त) ❖

नारदीय भक्ति का स्वरूप

स्वामी भूतेशानन्द

(रामकृष्ण संघ के भूतपूर्व महाध्यक्ष स्वामी भूतेशानन्द जी महाराज के विभिन्न व्याख्यानों के कई संग्रह प्रकाशित हुए हैं। प्रस्तुत लेख उनके द्वारा १९ दिसम्बर १९८४ ई. को रामकृष्ण मिशन, रामहरिपुर मे प्रदत्त प्रवचन का अनुलिखन है। बँगला मासिक उद्बोधन में प्रकाशित होने के बाद इसे 'श्रीरामकृष्णेर भावादर्श' नामक ग्रन्थ मे संकलित किया गया है। वहीं से, हमारे आश्रम के ही अन्तेवासी, स्वामी निर्विकारानन्द जी ने इसका हिन्दी मे अनुवाद किया है। – सं.)

सभी देशों में कुछ लोग ऐसे होते हैं, जो भक्ति-मार्ग पर चलना पसन्द करते है। सामान्यत: पूजनीय व्यक्ति के प्रति प्रेम को भक्ति कहते हैं। भक्ति प्रेम का ही एक विशेष रूप है, जिसमें प्रेम के साथ-ही-साथ पूज्य-भाव भी रहता है। भक्ति शब्द का प्राय: इसी अर्थ में उपयोग किया जाता है, परन्तु भगवान के सन्दर्भ में इसका विशेष अर्थ में प्रयोग होता है। किसी व्यक्ति को भक्तिमान कहने का तात्पर्य है कि उसकी भगवान में भक्ति है।

भक्ति का ही एक विशेष प्रकार है – नारदीय भक्ति। 'श्रीरामकृष्ण-वचनामृत' में ठाकुर कहते हैं, "कलियुग के लिए है नारदीय भक्ति।" नारद मुनि ने जिस भक्ति का उपदेश दिया है, उसे नारदीय भक्ति कहते है और इसका मूल तत्त्व है अहैतुकी प्रेम – किसी हेतु या कारण के बिना भगवान की भक्ति। श्रीमद् भागवत (१.७.१०) में इसी अहैतुकी भक्ति का निरूपण किया गया है –

आत्मारामाश्च मुनयो निर्ग्रन्था अप्युरुक्रमे।
कुर्वन्त्यहैतुकीं भक्तिम् इथ्यम्भूतगुणो हरिः ।।

– मुनिगण आत्माराम होते हैं अर्थात् उनका अपने भीतर ही आराम या आनन्द होता है, अपने भीतर आनन्द का स्रोत है, वे आनन्द-प्राप्ति के लिए किसी भी बाह्य वस्तु की आकांक्षा नही करते; जिनके चित्त में कोई ग्रन्थि या कामना नहीं है; वे भी भगवान की भक्ति किया करते हैं।

उस भक्ति के पीछे कोई हेतु नहीं होता अर्थात् इस लोक में सुख या परकाल में स्वर्गप्राप्ति की प्रत्याशा में वे भगवान से प्रेम नही करते। उनकी मुक्ति की इच्छा भी नहीं होती। तथापि वे भक्ति करते हैं। क्यों? भागवत में कहा गया है – **इथ्यम्-भूतगुणो हरिः** – भगवान के गुण ही ऐसे हैं कि मनुष्य उनकी भक्ति किये बिना रह नही सकता। वे स्वत:प्रिय हैं।

गीता (७.१६) में भगवान चार प्रकार के भक्तों के विषय में कहते है –

चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन।
आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ ।।

– आर्त, जिज्ञासु, धनकामी तथा ज्ञानी – ये चार प्रकार के पुण्यवान लोग मेरा भजन करते है। ये सभी यदि पुण्यवान न होते, तो भगवान का भजन नहीं करते।

आर्त एक प्रकार का भक्त है, जो किसी विपत्ति अथवा दु:ख से पीछा छुड़ाने के लिए भगवान का भजन करता है। ऐसी बात नहीं है कि विपत्ति में पड़कर सभी लोग भगवान का भजन करते हो। बहुत-से लोग तो बस विलाप करते रहते हैं, उससे बचने के विभिन्न उपाय खोजते रहते हैं; परन्तु जो लोग पुण्यवान हैं, उनके मन में विपत्ति के दिनों में भगवान का स्मरण हो आता है। ये हैं एक प्रकार के भक्त।

एक अन्य प्रकार के भक्त हैं, जो तत्त्व-जिज्ञासु होते हैं। वे जानना चाहते हैं कि इस जगत् का स्रष्टा कौन है और जीव का परिचालक कौन है? जिनकी इन बातों को जानने की इच्छा है, वे खुद समाधान न पाने पर भगवान की शरण लेते हैं। तीसरे प्रकार के भक्त हैं – अर्थार्थी, जो किसी सांसारिक प्रयोजन की सिद्धि के लिए भगवान का भजन करते हैं। और जिन्होंने भगवान का स्वरूप जान लिया है, ऐसे ज्ञानी को चौथे प्रकार का भक्त कहा है। इसके बाद गीता (७.१८) कहती है –

उदाराः सर्व एवैते ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम्।

– इन चार प्रकार के भक्तों में सभी अच्छे हैं, परन्तु ज्ञानी इनमें सर्वश्रेष्ठ हैं, क्योंकि वे मेरे सिवाय किसी की भी कामना नहीं करते। वे मेरी आत्मा हैं। आत्मा जैसे स्वत:प्रिय है, वैसे ही ये भक्त भी बिना कारण मुझे प्रिय हैं।

यहाँ पर हम देखते हैं कि भगवान का स्वरूप जानकर उनकी भक्ति करनेवाले ही श्रेष्ठ भक्त हैं। ये ज्ञानी बिना किसी कारण ही भगवान की भक्ति करते हैं। भगवान ऐसे गुणों से युक्त हैं कि वे लोग उनकी भक्ति किये बिना रह नहीं सकते। यहाँ पर उसी अहैतुकी भक्ति पर जोर दिया गया है, जिसे नारदीय भक्ति कहते हैं। भक्ति की परिभाषा करते हुए नारद ने कहा है – **सा त्वस्मिन् परमप्रेमरूपा** – एकमात्र ईश्वर के प्रति परमप्रेम को भक्ति कहते हैं। वही भक्ति परम-प्रेम-स्वरूपा है। इसी परमप्रेम पर विशेष बल दिया गया है। परमप्रेम का तात्पर्य उस प्रेम से है, जिसके पीछे कोई कारण या हेतु नहीं होता। यह प्रेम भगवान को छोड़ किसी अन्य पर नहीं होता।

प्रश्न उठ सकता है कि संसार में प्रेम के तो और भी अनेक उदाहरण हैं; यथा माँ का सन्तान के प्रति प्रेम, सन्तान का माँ के प्रति प्रेम, पति-पत्नी का आपसी प्रेम – ये सभी खूब प्रगाढ़ प्रेम हैं। नारद कहते हैं – "हाँ, ये सब भी प्रेम हैं, परन्तु परमप्रेम नहीं है।" इसके भीतर थोड़ा-सा स्वार्थ जुड़ा हुआ है। स्वार्थ-बुद्धि यही है कि अपने साथ उस वस्तु या

व्यक्ति के साथ सम्बन्ध जुड़े होने के कारण ही ऐसा प्रेम होता है। माँ 'मेरा पुत्र' जानकर बच्चे से प्रेम करती है। इसी प्रकार पुत्र भी 'मेरी माँ' तथा 'मेरा बाप' जानकर ही अपने माता-पिता से प्रेम करता है। पति-पत्नी भी अपनत्व के कारण ही आपस में प्रेम करते हैं। इस प्रकार 'मेरा' समझकर प्रेम करने से वह प्रेम सीमित हो जाता है, परन्तु परम प्रेम असीम होता है।

तो क्या भक्तों को भगवान के प्रति 'मेरे भगवान' ऐसा बोध नहीं होता? गोपियों ने तो श्रीकृष्ण को 'मेरे कृष्ण' नहीं कहा? परन्तु यह 'ममत्व' का भाव किसी स्वार्थ-बुद्धि से नहीं उत्पन्न होता, क्योंकि यहाँ भक्त भगवान को 'मेरे भगवान' नहीं, बल्कि केवल 'भगवान' जानकर ही प्रेम करता है। इसमें किसी कामना-पूर्ति का हेतु नहीं है, अपितु उन्हीं के लिए उनसे प्रेम किया जाता है। इस बात को थोड़े और विस्तार से कहें, तो समझने में सुविधा होगी। गोपिकाएँ भगवान को सर्वस्व अर्पित करके उनसे प्रेम करती थीं। जहाँ यह सर्वस्व समर्पण देखने में आता है, उसी को हम नि:स्वार्थ प्रेम कहते हैं। इसे समझना थोड़ा कठिन है, क्योंकि मनुष्य का मन इतना स्वार्थी है कि नि:स्वार्थ प्रेम की कल्पना तक नहीं कर सकता। बहुधा हम मातृ-स्नेह का उदाहरण दिया करते हैं कि माँ तो सन्तान से कोई आशा नहीं रखती, केवल उसे देती ही रहती है। परन्तु यहाँ भी प्रेम 'मेरा' बुद्धि के कारण है। यदि ऐसा नहीं होता, तो दूसरे बच्चों के प्रति भी वैसा ही प्रेम होता। परन्तु अपने उसी सन्तान के लिए माँ दूसरों के साथ कभी-कभी क्रूर आचरण भी करती है। यहाँ माँ ने पुत्र को अपने व्यक्तित्व के साथ जोड़ लिया है, दोनों मिलकर मानो एक हो गये हों।

भलीभाँति विचार करने पर यह समझ में आ जाता है कि मातृस्नेह भी नि:स्वार्थ नहीं है। एक बार एक माँ ने बताया कि सन्तान के प्रति उसके प्रेम में जरा-सा भी स्वार्थबोध नहीं है। हमने कहा – तुम जरा सोचकर देखो कि जिस प्रकार तुम अपनी सन्तान से प्रेम करती हो, ठीक उसी प्रकार क्या एक दूसरे के बच्चे से प्रेम कर सकती हो? उस महिला ने विचार करने के बाद कहा – नहीं कर सकती। हमने कहा – यही तुम्हारी सीमा है; तुम अपने सीमित व्यक्तित्व के साथ जोड़कर ही पुत्र से प्रेम करती हो।

भगवान सर्वव्यापी हैं, इसीलिए जब हम भगवान से प्रेम करते हैं, तो वह प्रेम भी सर्वव्यापी होता है। भगवान असीम हैं, अत: भगवान के प्रति होनेवाला प्रेम भी असीम है। इसीलिए उसे परमप्रेम कहा जाता है। इस परमप्रेम के साथ एक और बात कही गयी है – **सा त्वस्मिन् परमप्रेमरूपा**। इसी प्रेम को उन्होंने किसी एक पात्र के प्रति कहा है। भगवान का उल्लेख करके, उनका विश्लेषण करके देखने के बाद वे कहते हैं – नहीं, यह एक बड़ा गूढ़ तत्त्व है। भक्त, भगवान को ठीक पहचान नहीं सकता, वह उन्हें नहीं जानता और न जानने का प्रयास ही करता है। इसीलिए **'अस्मिन्'** अर्थात् किसी एक पात्र के प्रति कहते हैं। उस पात्र को भक्त ने ठीक से नहीं समझा है। वह केवल इतना ही जानता है कि वे हमारे भीतर-बाहर – सर्वत्र व्याप्त हैं, किन्तु वह उन्हें सीमित नहीं कर पाता, किसी विशेषण के द्वारा उनका निरूपण नहीं कर पाता, इसीलिए उन्हें 'अस्मिन्' कहा गया, क्योंकि बुद्धि के द्वारा पात्र को सीमित नहीं किया जा सका। 'अस्मिन्' किसी भी व्यक्ति या पात्र के ऊपर हो सकता है, परन्तु ऐसा होता नहीं। इस कारण कि यह परमप्रेम है। यह परमप्रेम एकमात्र भगवान के प्रति ही हो सकता है। अन्य सभी स्थानों पर प्रेम सीमित होता है। दूसरे प्रेमों के भीतर पूर्ण शुद्धता नहीं रहती, कुछ अशुद्धि रह जाती है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि माँ का सन्तान के प्रति प्रेम अत्यन्त प्रगाढ़ होता है। इस प्रकार का आत्मोत्सर्ग भला और कहाँ देखने को मिलता है? अपने शरीर-मन की सारी सुख-सुविधाओं को त्यागकर माँ अपनी सन्तानों की सेवा करती है। ऐसा न होने पर बच्चे का लालन-पालन नहीं हो पाता। और कम-से-कम उस समय तो माँ उससे कोई प्रत्याशा नहीं रखती। उस समय माँ के मन में यह सब नहीं आता कि बच्चा भविष्य में बड़ा होकर उसकी सेवा करेगा, पालन करेगा। सम्भव है कि उसके मन में यह भाव आता हो कि यह मेरे ऊपर निर्भर है। इसी प्रकार हो सकता है कि परम भक्त सोचे कि भगवान उसी के ऊपर निर्भर हैं। यह एक अद्भुत भाव है कि मेरे बिना भगवान का काम नहीं चलेगा। कृष्ण के प्रति यशोदा के प्रेम में भी यह भाव दिखाई देता है कि मेरे बिना गोपाल की सेवा कौन करेगा? राधा के श्रीकृष्ण के प्रति प्रेम में भी यही भाव है कि मेरे बिना श्रीकृष्ण की सेवा कौन करेगा? श्रीरामकृष्ण भी कहते हैं – "श्रीमती राधा कहती हैं, 'उनके चन्द्रावली के कुंज में जाने के कारण मैंने कोप नहीं किया है। वहाँ उन्हें क्यों जाना चाहिए? चन्द्रावली तो उनकी सेवा नहीं जानती'।" यहाँ एक साधारण-सी बात में जो माधुर्य छिपा है, उसे भक्तगण थोड़ा-सा विचार करने पर सहज ही समझ जायेंगे। जब भक्त की ऐसी बुद्धि हो जाती है कि मेरे बिना भगवान का काम नहीं चलेगा, तब उसके लिए उनसे कुछ भी माँगना बाकी नहीं रह जाता। जिसमें यह अहैतुक प्रेम है, वह भगवान का विश्लेषण करके नहीं देखता। जैसे वह स्वयं से प्रेम करता है, वैसे ही वह सहज-स्वाभाविक रूप से भगवान से भी प्रेम करता है। हम सभी सर्वाधिक अपने आप से ही प्रेम करते हैं। ऐसा क्यों है? हम तो स्वयं को 'मैं' कहकर ही प्रेम करते हैं, इसमें अन्य कोई कारण नहीं होता। और भक्त भी भगवान को अपना 'मैं' ही समझता है। वहाँ वह अपने आप को भी कोई स्थान नहीं देता, वह सेवक मात्र रह जाता है।

ऐसे भक्तों के लिए मुक्ति भी तुच्छ है । वे लोग उससे भी विपुल सम्पत्ति के अधिकारी हैं । लोग बन्धन से छूटने के लिए जिस मुक्ति की कामना करते हैं, वह तो आर्त भक्तों का लक्षण है । भागवत (३/२९/१३) में भगवान कहते है – मेरे भक्त मुक्ति भी नहीं चाहते –

सालोक्य-सार्ष्टि-सामीप्य-सारूप्यैकत्वमप्युत ।
दीयमानं न गृह्णन्ति विना सत्सेवनं जनाः ।।

– सालोक्य, सार्ष्टि, सारूप्य, सामीप्य और एकत्व – भक्त इन्ही को मुक्ति समझता है ।

सालोक्य –भगवान के साथ उन्हीं के लोक में चिरकाल तक निवास करना । चाहे वैकुण्ठ-लोक में हो, या गोलोक, शिवलोक या किसी अन्य लोक में, उनके साथ एक ही लोक में निवास करना बड़े सौभाग्य की बात है ।

सार्ष्टि – भगवान के समान ऐश्वर्य की प्राप्ति ।

सारूप्य – भगवान के समान रूप होना अर्थात् नारायण के भक्त का नारायण के समान रूप हो जायेगा । इसमें उनके साथ और भी निकटता हुई । उनके साथ निवास मात्र ही नहीं, अपितु उन्हीं के समान रूप-ऐश्वर्य-गुण – सब कुछ पाना ।

एकत्व – इसमें उससे भी अधिक निकटता है । एकत्व का अर्थ है – भगवान के साथ उनके अंगीभूत होकर रहना । अन्य प्रकार की भक्तियों में विरह होती है, पर भगवान के अंग होकर, उनके साथ नित्ययुक्त होकर रहने पर बिछुड़ने का भय नही रहता । **दीयमानं न गृह्णन्ति विना मत्सेवनं जनाः** – देने पर भी मेरे भक्त मुक्ति को स्वीकार नहीं करते । केवल एक शर्त पर वे इसे ले सकते हैं कि यदि इसके द्वारा उन्हें भगवत्सेवा की सुविधा हो जाय । यह है परमप्रेम का लक्षण ।

नारदीय भक्ति का अर्थ है परमप्रेम । जब एक बार मनुष्य उस प्रेमास्पद के प्रति इस प्रेम का अनुभव करता है, तब वह – **यत् ज्ञात्वा मत्तो भवति, स्तब्धो भवति, आत्मारामो भवति।**

जिसे जानकर मत्त अर्थात् पागल हो जाता है । स्तब्ध अर्थात् जड़ हो जाता है, भाव-विभोर हो जाता है, सन्तुष्ट हो जाता है, उसमें अन्य कोई बाह्य चेष्टा नही रह जाती और वह **आत्मारामो भवति** – आत्मा के आनन्द में विभोर हो जाता है । अपने भीतर ही असीम आनन्द का स्रोत मिल जाने पर उसे आनन्द हेतु किसी बाह्य वस्तु की अपेक्षा नही रह जाती ।

भक्त जब भक्ति की पराकाष्ठा तक पहुँच जाता है, तब उसकी यही अवस्था हो जाती है और यही नारदीय भक्ति का लक्षण है । इतना कहने के बाद नारद उसका विस्तार करते हुए कहते हैं – **सा न कामयमाना निरोधरूपत्वात्** – उसमें कोई कामना नहीं रह जाती, क्योंकि सारी कामनाओं का नाश हो जाने पर ही भक्ति का उदय होता है । इसलिए भक्ति के द्वारा कामनाओं की पूर्ति का कोई प्रश्न ही नहीं आता । सूत्र रूप में कहा जा सकता है कि उसमें ऐसी कोई कामना नहीं रह जाती, जिसके लिए कि वह भगवान से प्रेम करे और इस प्रेम की कोई सीमा नहीं होती । जैसे भगवान असीम हैं, वैसे ही उनके प्रति प्रेम भी असीम होता है । वे और भी कहते हैं कि इस प्रेम का कहीं अन्त है ही नहीं, बल्कि यह क्रमशः बढ़ती ही चली जाती है । भगवान मानो दिन-पर-दिन अपने उसी प्रेम से उसे पूर्णतः आच्छादित करते जाते हैं । भक्त अपने भीतर-बाहर उन्हीं की उपलब्धि करके उन्हीं में डूब जाता है ।

नारदीय भक्ति को एक वाक्य में 'अहैतुकी भक्ति' कहा जा सकता है । इस भक्ति में कोई हेतु या कामना नहीं है । भक्त कुछ लेना नहीं चाहता, केवल देना चाहता है, अपना सब कुछ देकर फकीर हो जाना चाहता है । उनका अपना कहने को कुछ भी नहीं रह जायेगा – सर्वस्व समर्पण ।

गीता (१२.८) में भगवान कहते हैं –

मय्येव मन आधत्स्व मयि बुद्धिं निवेशय ।
निवसिष्यसि मय्येव अत ऊर्ध्वं न संशयः ।।

– तू मुझमें ही मन को लगा, मुझमें ही बुद्धि को लगा । इससे तू निःसन्देह मुझे ही प्राप्त करेगा ।

इस प्रकार वे अपने को ही सब कुछ समर्पण करने को कहते हैं । उन्हें छोड़ इस संसार में मेरे लिए कुछ भी काम्य वस्तु नहीं है – भक्त इस भाव के साथ अनन्य मन से उनकी भक्ति करता है । इस प्रकार भक्ति करते हुए भक्त उन्हीं में अपने अस्तित्व को भी विलीन कर देता है ।

संक्षेप में कहें तो ज्ञानी को ज्ञानमार्ग के द्वारा जिस वस्तु की प्राप्ति होती है, भक्त भी भक्तिमार्ग के द्वारा उसी की उपलब्धि करते हैं । ज्ञानी कहते हैं – मैं ज्ञानसागर में निमग्न हो रहा हूँ । और भक्त कहते हैं – मैं प्रेमसागर में अवगाहन कर रहा हूँ ।

जो ज्ञानस्वरूप हैं, वे ही प्रेमस्वरूप तथा आनन्दस्वरूप हैं! उन्हें जो जिस भाव से चाहता है, वह उसी भाव से उनकी ओर अग्रसर होता है और उन्हीं में तन्मय हो जाना, इसकी चरम परिणति है । अन्तिम फल यही होता है । इसी को अहैतुकी भक्ति कहते हैं और इसी को नारदीय भक्ति भी कहते हैं । ❑

कर्तव्य-बोध

स्वामी आत्मानन्द

(ब्रह्मलीन स्वामी आत्मानन्द जी ने आकाशवाणी के चिन्तन कार्यक्रम के लिए विविध विषयों पर अनेक विचारोत्तेजनक लेख लिखे थे, जो उसके विभिन्न केन्द्रों द्वारा समय समय पर प्रसारित किये जाते रहे हैं तथा काफी लोकप्रिय हुए हैं। प्रस्तुत लेख आकाशवाणी, अम्बिकापुर से साभार गृहीत हुआ है। - सं.)

'बोध' एक ऐसा शब्द है, जो मनुष्य के साथ अविच्छिन्न रूप से जुड़ा है। पशु में बोध नहीं होता। आप कह सकते हैं कि पशु को ज्ञान होते देखा गया है। यह सच है, पर ज्ञान और बोध में अन्तर है। एक पश्चिमी विद्वान् ने पशु और मनुष्य का अन्तर बताते हुए कहा है – A man knows and an animal knows, but an animal does not know that he knows, while a man knows that he knows. अर्थात् जैसे मनुष्य जानता है, वैसे ही पशु भी जानता है, परन्तु पशु यह नहीं जानता कि वह जानता है, जबकि मनुष्य जानता है कि वह जानता है। दूसरे शब्दों में, मनुष्य को अपने ज्ञान का बोध होता है, जबकि पशु को ऐसा नहीं होता। मनुष्य की यही क्षमता उसे पशु से भिन्न करती है। एक संस्कृत सुभाषित में मनुष्य और पशु के इस अन्तर को स्पष्ट करते हुए कहा है –

आहारनिद्राभयमैथुनञ्च सामान्यमेतत् पशुभिर्नराणाम्।
धर्मैव तेषामधिको विशेषः तेनैव हीनाः पशुभिः समानाः॥

– "भोजन, नींद, भय और प्रजनन की प्रवृत्तियाँ - पशुओं तथा मनुष्यों में समान रूप से पायी जाती हैं। एक धर्म का तत्त्व मनुष्यों में अधिक होता है, वह यदि मनुष्य में न हो, तो वह पशु के समान है।"

इस सुभाषित में धर्म को मनुष्य और पशु में अन्तर करनेवाला तत्त्व बतलाया। इस धर्म को कर्तव्य-बोध भी कहते हैं। तात्पर्य यह कि धर्म वह है, जो मनुष्य में कर्तव्य-बोध भरता है। पशु में कोई कर्तव्य-बोध नहीं होता, वह अपनी सहज प्रेरणा से परिचालित होता है। एक स्वामिभक्त कुत्ता जब अपने स्वामी की रक्षा करने के लिए चोर पर झपट पड़ता है, तो वह कर्तव्य-बोध से प्रेरित हो ऐसा नहीं करता, अपितु अपनी सहज प्रेरणा से परिचालित होकर ऐसा करता है, जिसे हम अंग्रेजी में instinct कहते हैं। कर्तव्य-बोध की क्षमता मनुष्य में ही होती है। इसीलिए जैसे वह पुरस्कार पाने का अधिकारी होता है, वैसे ही दण्ड पाने का भी; जबकि कभी किसी ने अपने मालिक को बचानेवाले कुत्ते को पुरस्कार देकर सम्मानित नहीं किया।

इस विवेचन से यह स्पष्ट है कि हमें अपने कर्तव्य का पालन क्यों करना चाहिए। इसलिए करना चाहिए कि यही मनुष्य की मनुष्यता को उजागर करता है। वैसे तो पशुभाव केवल पशु का गुण नहीं, वह मनुष्य में भी होता है, पर मानव-जीवन की सार्थकता इसमें है कि वह अपने भीतर का पशुभाव दूर करके मानवता को जगाए। इस प्रक्रिया में, एक सक्षम साधन के रूप में, कर्तव्य-बोध हमारे सामने आता है, जिसे पूर्व में कहे गये सुभाषित में 'धर्म' कहकर पुकारा गया है।

अपने स्वार्थ के लिए जीना पशुता है और दूसरों के लिए जीने की चेष्टा करना मनुष्यता की अभिव्यक्ति है। यदि मनुष्य भी केवल अपने लिए जिये, तो उसमें और पशु में कोई अन्तर नहीं। कर्तव्य-बोध हमें दूसरों के लिए जीना सिखाता है। अधिकार-बोध यदि स्वार्थ का द्योतक है, तो कर्तव्य-बोध निःस्वार्थता का। मैसूर के महाराजा के पत्र के उत्तर में स्वामी विवेकानन्द ने जो लिखा था, उसकी कुछ पंक्तियाँ यों हैं – "मनुष्य अल्पायु है और संसार की सब वस्तुएँ वृथा तथा क्षणभंगुर हैं; पर वे ही जीवित हैं, जो दूसरों के लिए जीते हैं; शेष सब तो जीवित की अपेक्षा मृत ही अधिक हैं।"

कर्तव्य-बोध परिवार, समाज और देश को टूटकर बिखरने से बचाता है। कल्पना कीजिए कि माता, पिता, पुत्र, पुत्री, शिक्षक, विद्यार्थी, अधिकारी, कर्मचारी, व्यवसायी, किसान, मजदूर – सब अपने अपने कर्तव्यों से कतराने लगें। इससे कैसी विशृंखलता की सृष्टि होगी, इसका सहज ही अनुमान किया जा सकता है। मैं यदि अपने कर्तव्य का पालन नहीं करता, तो मुझे किसी से यह कहने का अधिकार नहीं है कि तुम अपने कर्तव्य का पालन क्यों नहीं कर रहे हो? यदि पति अपनी पत्नी के प्रति अपने कर्तव्य को न निभाये, तो उसे पत्नी से यह कहने का अधिकार नहीं मिलता कि तुम अपना कर्तव्य नहीं निभा रही हो।

सारांश यह कि कर्तव्य-बोध ही जीवन की धुरी है। वह हमारी मनुष्यता को प्रकट करके हमें सही अर्थों में मनुष्य बनने की राह पर ले जाता है। जिस परिवार, जिस समाज और जिस देश में जितनी संख्या में ऐसे कर्तव्य-बोध से भरे हुए मनुष्य होते हैं, वह परिवार, वह समाज और वह देश उतनी मात्रा में बलवान, सम्पन्न और सुदृढ़ होता है।

❑❑❑

मानस-रोगों से मुक्ति (६/१)

पं. रामकिंकर उपाध्याय

(हमारे आश्रम द्वारा आयोजित विवेकानन्द-जयन्ती समारोह के अवसरों पर पण्डितजी ने 'मानस-रोग' पर कुल ४५ प्रवचन दिये थे। प्रस्तुत अनुलेखन इकतालीसवें प्रवचन का पूर्वार्ध है। टेप से इसे लिपिबद्ध करने का श्रमसाध्य कार्य श्री राजेन्द्र तिवारी ने किया है, जो सम्प्रति श्रीराम संगीत महाविद्यालय, रायपुर में प्राध्यापक है। – सं.)

'मानस' के उत्तरकाण्ड में कागभुशुण्डि जी कहते हैं कि यह सारा संसार ही मानस-रोगों से ग्रस्त है; परन्तु जब व्यक्ति को अपने अन्त:करण में निहित रोग का बोध और उसे मिटाने की तीव्र आकांक्षा का उदय होता है, तब वह किसी योग्य वैद्य या चिकित्सक की खोज करता है। पर केवल योग्य वैद्य या चिकित्सक को पा लेना ही यथेष्ट नहीं है। बहुत बड़े तथा योग्य वैद्य के पास पहुँच कर भी यदि व्यक्ति उनकी बातों पर विश्वास न करे, उनके द्वारा दी गई दवा का निर्दिष्ट पद्धति तथा पथ्य का सेवन न करे, तो वह स्वस्थ नहीं हो सकता। मन के रोगों के सन्दर्भ में गोस्वामीजी एक सूत्र देते हैं –

राम कृपाँ नासहिं सब रोगा। ७/१२२/५

भगवान श्रीराघवेन्द्र की कृपा से सारे रोग दूर हो जाते हैं। कृपा का लक्षण क्या है? कृपा तो बड़ा व्यापक शब्द है। सभी लोग भगवान को कृपालु कहकर पुकारते हैं, परन्तु यदि हम कृपा शब्द के अर्थ पर ध्यान दें, तो लगता है कि प्रत्येक व्यक्ति के मन में कृपा की अपनी एक अलग धारणा है। एक व्यक्ति जब कहता है कि भगवान बड़े कृपालु हैं, या भगवान ने मुझ पर बड़ी कृपा की है, तो उसकी क्या मान्यता होती है? उसके मन में कोई सांसारिक कामना-वासना रहती है और जब वह पूर्ण होती है, तो वह कृतज्ञ होकर कहता है कि भगवान बड़े कृपालु हैं, मुझ पर उनकी कृपा हुई है। प्रारम्भ में कृपा का यह अर्थ मानने में भी कोई बुराई नहीं है। माँ के मन में बालक के प्रति जो स्नेह तथा वात्सल्य है, वह मिठाई के रूप में भी बालक के सामने आता है। मिठाई पाकर बालक प्रसन्न हो जाय और कहे कि माँ मुझसे बड़ा प्रेम करती है, तो जैसे यह अस्वाभाविक नहीं है, वैसे ही किसी संसारी कामना-वासना की पूर्ति होने पर व्यक्ति को यदि ऐसा प्रतीत हो कि यह ईश्वर की महती कृपा है, तो यह स्वाभाविक ही है। परन्तु इस तरह की कृपा के साथ कुछ समस्याएँ जुड़ी हुई हैं।

अत: व्यक्ति को क्रमश: कृपा के इस रूप से मुक्त होकर कृपा के वस्तविक रूप को हृदयंगम करना होगा। इसके लिए 'मानस' में एक दूसरा दृष्टान्त दिया गया है। जैसे माँ अपने बालक को मिठाई खिलाये, सुन्दर वस्त्रों से सजाये और खेलने के लिए अच्छे-से-अच्छे खिलौने दे, यह माँ का स्नेह तो है, परन्तु माँ का वात्सल्य एक दूसरे रूप में भी सामने आता है। गोस्वामीजी ने दृष्टान्त दिया कि यदि उसका वही पुत्र बीमार हो जाय, उसके शरीर में फोड़ा हो जाय, तो उस समय भी माँ का वात्सल्य क्या उसी रूप में प्रगट होगा, जिस रूप में साधारणतया बालक चाहता है? माँ जब अपने बालक को बीमार देखेगी, तो निश्चित रूप से डॉक्टर या वैद्य को बुलायेगी। वैद्य दवा देगा। यह जरूरी नहीं कि दवा मीठी ही हो। वैसे चेष्टा यही की जाती है कि दवा मीठी ही दी जाय, पर कई बार यह सम्भव नहीं होता। जो माँ मिठाई देकर बालक को तृप्त करती थी, उसे बालक को अगर कड़वी दवा खिलानी पड़े, को वह खिलायेगी या नहीं? फिर यदि बालक के शरीर में कहीं भयानक फोड़ा हो जाय, तो उस समय माँ का जो व्यवहार होगा, वह तो कृपायुक्त दिखाई नहीं देगा और जब शल्य-चिकित्सक उस फोड़े का आपरेशन करता है, तब भी माँ अपने हृदय को कठोर बनाकर उसके लिए प्रस्तुत हो जाती है। वस्तुत: माँ का उद्देश्य बालक को स्वस्थ बनाना है।

इस प्रकार जैसे बालक के ऊपर माँ की कृपा दोनों ही रूपों में दिखाई देती है; वैसे ही हम पर भगवान की कृपा तब भी दिखाई देती है, जब वे हमारी कामनाओं की पूर्ति करते हैं, पर मुख्य बात यह है कि इस कामनापूर्ति का हमारे मन पर क्या प्रभाव पड़ता है! यह बड़े महत्व की बात है। यदि ईश्वर ने हमें सुख-सम्पत्ति दी, हमारी कामनाएँ पूरी की, तो उसका एक फल तो यह हो सकता है कि हमारी कामनाएँ निरन्तर बढ़ती ही जायँ, कभी सन्तोष ही न हो, जैसा कि प्राय: होता है। परन्तु इसका फल यह भी हो सकता है कि जैसे संसार में जब कोई व्यक्ति आपको कोई भेंट देता है, तो आप गद्गद होकर उसे धन्यवाद देते हैं, उसके प्रति कृतज्ञता प्रगट करते हैं। आपके मन में यह बात भी कहीं-न-कहीं आती है कि इन्होंने जब यह वस्तु मुझे भेंट में दी है, तो मुझे भी किसी अवसर पर इन्हें कुछ भेंट करना चाहिए। ठीक वैसे ही भगवान की हम पर पदार्थों, वस्तुओं या कामनाओं की पूर्ति के रूप में जो कृपा होती है, उसके द्वारा यदि हमारे मन में भगवान के प्रति कृतज्ञता का उदय हो जाय, तो यह परिणाम सही हुआ। गोस्वामीजी 'विनय-पत्रिका' में भगवान से यही कहते हैं।

'विनय-पत्रिका' एक ऐसा ग्रन्थ है कि यदि आप 'मानस' का समग्र आनन्द लेना चाहें, तो उसके साथ 'विनय-पत्रिका'

को जोड़कर ही पढ़ें । 'विनय-पत्रिका' में आप यह देखेंगे कि गोस्वामी जी बारम्बार भगवान के उपकारों का स्मरण करते हैं । वे कहते हैं –

पल पल के उपकार रावरे,
जानि बूझि सुनि नीके । विनय. १७१

– हे प्रभो, आपने हर पल मेरे ऊपर इतने उपकार किये कि उसकी तो गणना ही नहीं हो सकती ।

कोटिहुँ मुख कहि जात न
प्रभु के, एक एक उपकार । विनय. १०२

इसका अभिप्राय यह है कि भगवान की दी हुई वस्तुओं को पाकर जब हमारे मन में उपकार और कृतज्ञता की वृत्ति आ जाय, समर्पण की भावना आ जाय, तो हमारी कामनाओं की पूर्ति का सार्थक उपयोग हुआ; परन्तु यदि कामनापूर्ति से हमारी कामनाएँ बढ़ती जायँ या जब तक मिलती रहें, तब तक धन्यवाद और जरा भी कमी दिखाई दे, तो फिर उतनी ही शत्रुता और विरोध की भावना आ जाय, तो इससे बढ़कर कृपा का कोई दुरुपयोग नहीं होगा ।

'मानस' में अलग अलग पात्रों के माध्यम से कृपा के अलग अलग पक्षों का वर्णन किया गया है । नारदजी के सन्दर्भ में कृपा का एक और सुग्रीव के सन्दर्भ में इसका दूसरा रूप दिखाई देता है । फिर विभीषण के सन्दर्भ में इसका एक और भी अलग रूप दिखाई देता हैं । इसे यों कह सकते हैं कि भगवान की कृपा का कोई एक ही रूप नहीं, बल्कि वह अगणितरूपा है । वह भिन्न भिन्न व्यक्तियों के जीवन में भिन्न भिन्न रूपों में आती है । नारद के जीवन में कृपा जिस रूप में आई, वह उसका बड़ा कठोर रूप है और सुग्रीव के जीवन में उसका रूप अत्यन्त मधुर है । कृपा का यह मधुर रूप काफी-कुछ सांसारिक लोगों के जीवन में दिखाई देता है ।

सुग्रीव के जीवन में न तो भगवान को पाने की कोई लालसा है न कोई वृत्ति । वह तो भय से संत्रस्त और अभाव से ग्रस्त है । बालि ने उसकी पत्नी तथा सम्पत्ति को छीन लिया है और वह सुग्रीव को भी मार डालना चाहता है । उसके इस भय तथा अभाव का हनुमान जी सदुपयोग करते हैं । यही सन्त की भूमिका है । सुग्रीव और हनुमान जी में अनोखा सम्बन्ध यह है कि सुग्रीव के मन में हनुमान जी के प्रति गुरु-भावना है और हनुमान जी के मन में सुग्रीव के प्रति गुरु-भावना है । यह हनुमान जी की महानता और निराभिमानता का एक दृष्टान्त है । वस्तुत: यदि साधना की दृष्टि से विचार करके देखें, तो हनुमान जी ने एक महान् गुरु की भूमिका पूरी की । मानस-रोगों के सन्दर्भ में एक जो बड़ी मनोवैज्ञानिक बात कही गई है, उसकी ओर मैं आपका ध्यान आकृष्ट कर दूँ । मनुष्य के मन में प्राय: तीन इच्छाएँ आ ही जाती है – एक तो धन की, दूसरी पुत्र की और तीसरी कीर्ति की । इसी को 'मानस' में त्रिविध ईषना कहा गया है । और मानस-रोगों के सन्दर्भ में इस त्रिविध ईषणा को तिजारी बुखार कहा गया है –

सुत बित लोक ईषना तीनी । ७/७१/६
त्रिबिध ईषना तरुन तिजारी । ७/१२१/३६

यह वाक्य बड़ा सोच समझकर कहा गया है । आप लोगों में से कुछ लोग तिजारी ज्वर से परिचित होंगे अथवा उसके बारे में सुना तो अवश्य होगा कि एक दिन व्यक्ति को जाड़ा देकर ज्वर हो आया और दूसरे दिन ऐसा उतर गया कि लगने लगा कि अब वह बिल्कुल ठीक है, पर तीसरे दिन फिर वैसा ही बुखार हो गया । इसको तिजारी ज्वर कहते हैं ।

गोस्वामी जी कहते हैं कि ये तीन तरह की कामनाएँ तिजारी ज्वर के समान है । इसमें दो संकेत है – एक तो इस ज्वर में जाड़ा बहुत लगता है और वह जाड़ा अस्वाभाविक होता है । ठण्ड के दिनों में यदि किसी को जाड़ा लगे और वह ओढ़ने की चेष्टा करे, तो वह स्वाभाविक है, परन्तु आपने देखा होगा कि जब बहुत गर्मी पड़ रही होती है, तब भी ऐसा बुखार होने पर व्यक्ति जाड़े से काँपने लगता है और ओढ़ने का आग्रह करता है । इसी प्रकार कामनाओं के चलते व्यक्ति के जीवन में यही चक्र दिखाई देता है । एक दिन स्वस्थ और एक दिन अस्वस्थ । यदि कामना पूर्ण हो गयी, तो लगता है स्वस्थ है, लेकिन तत्काल एक नई कामना का जाड़ा तो लगता ही है, परन्तु जब कोई कामना अस्वाभाविक होती है, तब उसका जाड़ा भी अस्वाभाविक होता है । ऐसी स्थिति में क्या आप उसे यह कहकर समझा सकेंगे कि तुम्हारा ठण्ड अस्वाभाविक है, अभी तो बहुत गर्मी लग रही है । यदि आप बुद्धिमत्ता से भाषण देकर उसे समझाना चाहें, तो उसे किसी भी प्रकार सन्तोष नहीं होगा । सन्तोष न होना ही कामनाओं की समस्या है । तब घर के लोग क्या करते हैं? उसको कपड़ों से ढँक देते हैं । उससे भी जब उसका जाड़ा दूर नहीं होता, तो उसके ऊपर एक-पर-एक कई वस्त्र डाल देते हैं । पर वैद्य क्या करता है? चतुर चिकित्सक दोनों उपाय करते हैं – तात्कालिक भी और दीर्घकालिक भी । तात्कालिक उपाय तो यही है कि उसे वस्त्रों से ढँक दिया जाय, परन्तु वैद्य एक ऐसी दवा भी देगा, जिससे उसे यह अस्वाभाविक जाड़ा लगना बन्द हो जाय । ठीक इसी प्रकार सद्गुरु रूपी वैद्य भी इस 'त्रिबिध ईषना तरुन तिजारी' रोग से व्यक्ति को मुक्त करता है ।

कामनाओं की निन्दा आप बड़े सुन्दर ढंग से कर सकते हैं । सचमुच ही कामनाओं में अगणित बुराइयाँ भरी पड़ी हैं । गीता में तो जगह जगह कामना की निन्दा की गयी है, पर वहाँ भी आपको बड़ा विलक्षण विरोध क्रम मिलेगा । एक ओर तो भगवान कामनाओं की निन्दा करते हैं और दूसरी ओर आदेश देते हैं कि तुम कामनापूर्ति के लिए यज्ञ और देवताओं की पूजा

करो, वे तुम्हारी कामनाओं को पूरा करेंगे । एक ओर वे कहते हैं – अर्जुन, तुम युद्ध करो, निष्काम होकर कर्म करना ही योग है । और दूसरी ओर यह भी कहते हैं कि यदि तुम युद्ध में जीत गये, तो तुम्हें इस पृथ्वी का भोग मिलेगा और यदि मारे गये तो स्वर्ग मिलेगा –

हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम्।
तस्मादुत्तिष्ठ कौन्तेय युद्धाय कृतनिश्चयः।। २/३७

ये दोनों बातें विरोधी-सी प्रतीत होती हैं । यदि कामना निन्दनीय होता, तो आदि से अन्त तक यही कहा जाना चाहिए कि कामना छोड़ो । परन्तु यह भी कहा गया कि कामना छोड़ो और उसके साथ साथ कामनापूर्ति का मार्ग भी बताया गया । इसका सांकेतिक तात्पर्य यही है कि जैसे रोगी को ठण्ड लगने पर पहले तो उसे वस्त्रों से ढँक दिया गया और बाद में रोगजन्य जाड़े को दूर करने के लिए दवाई भी दी गयी । जब व्यक्ति को लगने लगा कि अब उसे कपड़े ओढ़ने की जरूरत नहीं है, तब वह स्वाभाविक रूप से स्वस्थ हो जाता है । इसी प्रकार मनुष्य के मन की कामना है, जिसे गोस्वामीजी 'त्रिविध ईषना तरुन तिजारी' कहते हैं; यह बुखार सद्गुरु वैद्य के द्वारा बताये गये 'सजीवन मूरी' – संजीवनी जड़ी के सेवन से दूर हो जाती है और व्यक्ति स्वस्थ हो जाता है ।

इस दृष्टि से आप रामायण के पात्रों के चरित्र पर विचार करें । सुग्रीव एक अस्वस्थ पात्र हैं । उनके पास धन नही है, पत्नी नहीं है और अर्थ तथा काम की कामना उनके जीवन में विद्यमान है । दूसरी ओर हनुमान जी हैं – **प्रबल वैराग्य दारुण प्रभंजन-तनय** ।

बड़ा मनोवैज्ञानिक सत्य है । यदि आप किसी रोगी के पास जाकर कहें कि जरा मुझे देखो, मैं तो एक भी कपड़ा नहीं पहना हूँ और तुम रजाई-पर-रजाई ओढ़े हो, ऊपर से और माँग रहे हो, तो क्या आपका यह कहना रोगी को सुहायेगा? हनुमान जी बाल-ब्रह्मचारी हैं । सुग्रीव से कह सकते थे कि तुम पत्नी के लिय क्यों रोते हो; हमें देखो, हमने तो विवाह किया ही नहीं, पत्नी की कोई जरूरत ही नहीं है । पहले नहीं, तो तुम अब ब्रह्मचारी बन जाओ । हनुमान जी के जीवन में न धन की कामना है, न पुत्र या कीर्ति की । वे तीनों कामनाओं से मुक्त हैं; परन्तु वे एक ऐसे सद्गुरु है, ऐसे महान् चिकित्सक हैं कि जानते हैं – सुग्रीव इस समय किस मनःस्थिति में हैं! अभी वे समझने की, ग्रहण करने की स्थिति में नहीं हैं । इस समय तो जरूरत इस बात की है कि उनके कामनाओं की पूर्ति का कोई मार्ग ढूँढ़ा जाय । इसमें आपको हनुमान जी की यह एक चतुराई दिखाई देगी कि वे इन कामनाओं को एक नई दिशा दे देते हैं । कौन सी दिशा?

एक उपाय तो यह था कि हनुमान जी बालि से युद्ध करते और उससे राज्य छीनकर सुग्रीव को दे देते । बालि को हराकर सुग्रीव की पत्नी उन्हें लौटा देते । हनुमान जी में इतनी सामर्थ्य थी । वाल्मीकि रामायण में लिखा हुआ है कि भगवान राम जब लंका से लौटकर अयोध्या आये, तो एक दिन महर्षि अगस्त्य प्रभु से मिलने आये । भगवान राम ने महर्षि अगस्त्य का स्वागत किया और कहा कि मेरे मन में एक बहुत बड़ा प्रश्न है, एक बड़ा संशय है । प्रभु ने पूछा – "इतने दिनों से निरन्तर मैं हनुमान को देख रहा हूँ, इतना शक्तिशाली मुझे ब्रह्माण्ड में कोई भी दिखाई नहीं दिया । पर मुझे बड़ा आश्चर्य होता है कि ऐसे महान शक्तिशाली होते हुए भी उन्होंने सुग्रीव को बालि के संकट से क्यों नहीं बचाया?"

वहाँ पर पौराणिक पद्धति से उत्तर है । महर्षि अगस्त्य ने उस समय उत्तर दिया – "राम, तुम ठीक कहते हो, हनुमान जी में इतनी सामर्थ्य थी कि हराने की तो बात ही क्या, वे बालि को मार भी सकते थे, पर उनके साथ समस्या यह है कि वे अपना बल भूले रहते हैं ।" इसे यदि आध्यात्मिक अर्थों में देखें, तो केवल हनुमान जी ही नहीं, वस्तुतः जितने बड़े लोग होते हैं, उनका सबसे महत्वपूर्ण लक्षण यही होता है । यदि किसी व्यक्ति को अपने बड़प्पन की याद बनी रहे, तो वह उसके लिए बोझ बन जाती है । जैसे आप सिर पर कोई वस्तु उठा लें, तो निरन्तर बोध होता रहेगा कि सिर पर यह बोझ है । दूसरी ओर व्यक्ति के शरीर पर सिर भी जुड़ा हुआ है, परन्तु उसे कभी नहीं लगता कि मेरे ऊपर सिर लदा हुआ है । इसका अभिप्राय यह है कि जो सच्चा महापुरुष है, वह बड़प्पन को बोझ की भाँति नहीं ढोता । बड़प्पन तो सहज-स्वाभाविक रूप से उसके जीवन का एक अंग है, अतः स्वाभाविक रूप से उसे अपने बड़प्पन की याद नहीं रहती । हनुमान जी को जब किसी विशेष अवसर पर उनकी विशेषता की याद दिलाई जाती थी, तब हनुमान जी उसका स्मरण करके उस कार्य में लग जाते थे और उसके पूरा हो जाने पर, वे पुनः अपने बल को भूल जाते थे । इस रूप में वह हनुमान जी की निरभिमानता तथा गुणाभिमान-शून्यता का प्रतीक है । पर इस बात को हम दूसरे सन्दर्भ में भी ले सकते हैं ।

रामायण में कई ऐसे प्रसंग आते हैं, जहाँ यह प्रश्न उठाया जाता है कि सांसारिक कामनाएँ होनी चाहिए या नहीं? एक ओर तो हनुमान जी, भरत जी आदि पात्रों के जीवन में सांसारिक कामना का लेश तक नहीं है, परन्तु दूसरी ओर दशरथ जी के जीवन में कामना है, पार्वती जी के पिता के मन में अपनी पुत्री के विवाह की चिन्ता है । संसार में भी जैसे बहुत-से गृहस्थों के जीवन मे पुत्र के अभाव में व्याकुलता होती है, पुत्र पाने की इच्छा होती है, वैसे ही महाराज दशरथ के जीवन में भी दिखाई देती है । जैसे एक माता-पिता को

आज अपनी कन्या के विवाह की चिन्ता होती है, वैसे ही हिमाचल और मैना को भी अपनी पुत्री के विवाह की चिन्ता है और जैसे धन-सम्पत्ति तथा पत्नी के अभाव में व्यक्ति को दु:ख होता है, वैसे ही सुग्रीव भी दुखी होते हैं ।

पर इस भिन्नता में भी सर्वत्र एक समानता है? सुग्रीव की कामनाओं की पूर्ति हनुमान जी अपने बल के द्वारा भी कर सकते थे, अन्य उपायों से भी कामनाओं की पूर्ति हो सकती है, लेकिन सही अर्थो में कामना की पूर्ति कब होगी? जो चतुर चिकित्सक है, सद्‌गुरु है, उन्हें तो यह चिन्ता बनी रहती है कि इस चिकित्सा के बहाने कैसे इस व्यक्ति के मन की कामनाओं को भगवान की ओर मोड़ दें, भगवान से जोड़ दें । बस, मूल बात यही है । इन तीनों प्रसंगों में आप यही पायेंगे । तीनों जो महानतम गुरु हैं, उनकी भूमिका यही है ।

देवर्षि नारद हिमाचल के घर जाते हैं । हिमचल और मैना ने उनके चरणों में प्रणाम किया और पार्वती को बुलाकर कहा कि नारद जी के चरणों में प्रणाम करो । उसके बाद नारद जी से उन्होंने वही कहा, जो बहुधा कहा जाता हैं । हस्तरेखा बड़ी लोकप्रिय चीज है । एक सज्जन ने मुझे बताया कि जब गाड़ी में जगह नहीं मिलती, तो वे लोगों के हाथ देखने लग जाते हैं; इससे लोग तुरन्त जगह बनाकर उन्हें अपने पास बिठा लेते हैं और हाथ दिखाकर अपना भविष्य पूछने लगते हैं । व्यक्ति में अपना भविष्य जानने की तीव्र लालसा होती है और वह हिमाचल तथा मैना के जीवन भी है । उन्होंने अपनी कन्या को आगे करके कहा – महाराज, आप त्रिकालज्ञ और सर्वज्ञ हैं, मेरी कन्या का हाथ देखकर उसके गुण-दोष बताइए –

त्रिकालग्य सर्बग्य तुम्ह गति सर्बत्र तुम्हारि ।
कहहु सुता के दोष-गुन मुनिबर हृदयँ बिचार।। १/६६

नारदजी ने हाथ की रेखाएँ देखकर कहा कि तुम्हारी कन्या बड़ी मंगलमयी है, यह परम पतिव्रता होगी, बड़ी सौभाग्यवती है । बहुत से हस्तरेखा देखनेवाले ऐसे ही बताते है, पर इसके बाद वे बात को अपने मतलब की ओर मोड़ देते हैं । वे कहते हैं – यह अनिष्ट फल है, दक्षिणा दो, तो हम मिटा देंगे । साधारण व्यक्ति की दृष्टि अपने लाभ की ओर होती है । उसमें तथा सन्त में यही अन्तर है । पार्वती के हाथ में भी अनिष्ट फल तो दिखाई दे रहा है, पर नारद जी ने कहा कि कन्या तो बड़ी सुलक्षणा है, लेकिन इसे जो पति मिलेगा, उसमें दो-चार दोष होंगे । कौन कौन से? बोले –

सुनहु जो अब अवगुन दुइ चारी ।।
अगुन अमान मातु पितु हीना ।
उदासीन सब संसय छीना ।।१/६७/७-८
जोगी जटिल अकाम मन नगन अमंगल बेष ।
अस स्वामी एहि कहँ मिलिहि परी हस्त असि रेख।।१/६७

– गुणहीन, मानहीन, माता-पिता रहित, उदासीन, बेपरवाह, जोगी, जटाधारी, निष्काम-हृदय, नंगा और अमंगल वेशवाला पति इसे मिलेगा । इसके हाथ में ऐसी ही रेखा पड़ी हुई है ।

सुनकर हिमाचल और मैना तो व्याकुल हो गये । पर नारद जी रुके नहीं और आगे जो उन्होंने वाक्य कहा, वह तो और भी निराशाजनक था । उन्होंने पहला वाक्य यही कहा –

कह मुनीस हिमवंत सुनु जो बिधि लिखा लिलार ।
देव दनुज नर नाग मुनि कोउ न मेटनिहार ।। १/६८

– हिमवान, सुनो, विधाता ने जो कुछ व्यक्ति के ललाट पर लिख दिया है, जो उसका प्रारब्ध है, उसे देवता मनुष्य अथवा मुनि, कोई भी बदलने में समर्थ नहीं है ।

बात तो बड़ी निराशाजनक लगती है, पर इसका उद्देश्य बिल्कुल अलग है । कोई व्यक्ति अगर किसी को फल बताकर केवल अपने व्यक्तिगत स्वार्थ की पूर्ति करता है, तब तो वह स्वार्थी है, पर यदि वह किसी को बता दे कि उसे कोई अनिष्ट होनेवाला है और उससे बचने का कोई उपाय नहीं है, तब तो वह बेचारा आतंक में ही मर जायगा । इससे तो अच्छा उस बेचारे को फल बताना ही नहीं था । पर नारद जी का उद्देश्य क्या था? यही सन्त की विशेषता है । नारद जी जानते थे कि पार्वती जी का विवाह शंकर जी से होनेवाला है? रामायण में तो लिखा हुआ है कि पार्वती जी शंकर जी की शक्ति हैं, उनसे वे नित्य अभिन्न हैं । और आगे चलकर जब मैना ने शंकर जी को देखा, तो उन्हें नारद जी पर बड़ा क्रोध आ गया और वे बोलीं – मैंने नारद का क्या बिगाड़ा था, जो उन्होंने मेरा बसता हुआ घर उजाड़ दिया –

नारद कह मैं काह बिगारा ।
भवनु मोर जिन्ह बसत उजारा ।।१/९७/१

उन्होंने तो यहाँ तक कह दिया कि – मैं इसे लेकर पहाड़ से गिर पड़ूँगी, आग में जल जाऊँगी या समुद्र में कूद पड़ूँगी; चाहे घर उजड़ जाय या सारे संसार में अपयश हो जाय, पर अपनी पुत्री का विवाह इस पागल वर के साथ नहीं करूँगी –

तुम्ह सहित गिरि तें गिरौं
पावक जरौं जलनिधि महुँ परौं ।
घरु जाउ अपजसु होउ जग
जीवत बिबाहु न हौं करौं।। १/९६

तब नारदजी ने मैना से कहा – क्या तुम अपनी पुत्री का विवाह शंकर जी से नहीं करोगी? पहले यह तो सुन लो कि तुम्हारी पुत्री कौन है! तुम क्या समझ रही हो कि उनका विवाह आज हो रहा है? नहीं, नहीं, वे तो नित्य अभिन्न हैं –

जगदम्बा तब सुता भवानी ।।
अजा अनादि सक्ति अबिनासिनि ।
सदा संभु अरधंग निवासिनि ।। १/९८/२-३

नारद जी जब यह सब जानते थे, तो पहले ही क्यों नहीं बता दिया? पहले भी तो कह सकते थे कि तुम्हारी कन्या तो शंकर की शक्ति है। क्या पहले उन्हें पता नहीं था? पहले भी पता था और बाद में भी। पर नारद जी ने सोचा कि इस फल का कुछ सदुपयोग होना चाहिए। कभी कभी भय को भी सही दिशा में मोड़कर उसका बड़ा सार्थक उपयोग हो जाता है। हिमाचल के व्याकुल होने पर नारद जी ने कहा – ठीक है, इसका एक उपाय बताता हूँ। उन्होंने यह नहीं कहा कि तुम्हारी कन्या का विवाह शंकर जी से होगा; ज्ञात है, तो भी नहीं बताया। बोले – मैंने वर के जितने दोष बताए, मिलाकर देखने पर वे सब मुझे शंकर जी में दिखाई देते हैं। अब एक ही उपाय है। क्या? यदि किसी तरह इस कन्या का विवाह शंकर से हो जाय, तो दोष का भी सदुपयोग हो जाय –

जे जे बर के दोष बखाने।
ते सब सिव पहि मैं अनुमाने।।
जौ बिबाहु संकर सन होई।
दोषउ गुन सम कह सब कोई।। १/६९/३-४

भगवान शंकर का जो सांकेतिक स्वरूप है, वह यही है। सर्प को आभूषण बनाना माने? रत्न और सोने का आभूषण तो कोई भी धारण कर लेता है, पर सर्प तो दूषण का प्रतीक है और इसका अर्थ है कि गुण को तो आभूषण की तरह धारण करनेवाले संसार में बहुत हैं, पर दोषों को भी जो भूषण बना ले, वह शिव है। नारद जी ने कहा, तुम्हारी कन्या यदि शंकर जी को पति के रूप में पा ले, तो उसका परिणाम होगा कि उससे ज्योतिष का फल भी घट जायगा और कोई दोष भी न रह जायगा। हिमाचल बोले – महाराज, इसके लिए क्या करना होगा? नारद ने कहा – यदि तुम्हारी कन्या तप करे –

जौ तपु करै कुमारि तुम्हारी।। १/७०/५

तप करना होगा। बड़ी विचित्र बात है, विवाह और तप? दोनों बातें तो बिल्कुल भिन्न-सी हैं। पर नारद जी ने केवल हस्तरेखा का फल नहीं बताया, मात्र यह नहीं कहा कि इसका विवाह शंकर जी से कर दो, बल्कि साथ में यह भी जोड़ दिया कि तुम्हारी कन्या शिव जी को पति के रूप में पाने के लिए तप करे। इससे शंकर जी प्रसन्न होंगे, तब उनके साथ इस कन्या का विवाह होगा। नारद जी चाहते तो आशीर्वाद दे देते कि कन्या का विवाह शंकर जी से हो। पर उन्होंने कहा – मैं उपाय बता देता हूँ, तुम्हारी कन्या को तप करना होगा, तप से शिव जी प्रसन्न होंगे और उसे पति के रूप में मिलेंगे। इसका परिणाम यह हुआ कि उन्होंने विवाह की कामना को भी एक ऐसी अद्भुत रीति से मोड़ दिया कि वह तप से जुड़ गया।

नारद जी के चले जाने के बाद जब पार्वती सामने आईं, तो हिमाचल और मैना यह सोचकर सिहर उठे कि हमारी कन्या इतनी सुकुमारी है और नारद जी ने इसे तपस्या करने के लिए कह दिया है। हाय, उन्होंने कितना कठोर उपाय बता दिया है। अब क्या होगा? पार्वती तत्काल अपने माता-पिता की समस्या को समझ गईं। उन्होंने कहा –

सुनहि मातु मैं दीख अस सपन सुनावउँ तोहि।
सुंदर गौर सुबिप्रबर अस उपदेसेउ मोहि।। १/७२

– माँ, मैंने आज एक स्वप्न देखा कि एक सुन्दर गौर वर्ण के ब्राह्मण ने मुझे उपदेश दिया कि पार्वती, तुम शिव को पति के रूप में पाने के लिए तपस्या करो।

हिमाचल ने मिलाकर देखा कि नारद जी ने जो कहा और पार्वती को जो स्वप्न हुआ, उन दोनों में साम्य है। उनका नारद जी की बातों पर विश्वास बढ़ गया और उन्होंने पार्वती को तप करने भेज दिया। इसमें विशेषता यह है कि एक ओर कामना तो है, पर उस कामना को निष्कामता की दिशा में मोड़ा जा रहा है। जो नकली जाड़ा लग रहा है, उसे मिटाने का उपाय करना चाहिए। इसीलिए हम देखते हैं कि इसका परिणाम कितना सुन्दर निकला, यह कामना भी कितनी कल्याणकारी सिद्ध हुई। विवाह की इच्छा सांसारिक इच्छा है, पर विवाह के लिए शिव को पाने की इच्छा और शिव को पाने हेतु तप करने की इच्छा ... । परिणाम यह हुआ कि पार्वती घोर तप करने लगीं और तप से उनके अन्त:करण में दिव्य निष्कामता का उदय हुआ। सकामता की अन्तिम परिणति निष्कामता है। इसीलिए बाद में भगवान शंकर ने सप्तर्षियों से कहा कि जाकर पार्वती की परीक्षा लो। तपस्या की परीक्षा क्या है?

साधारणतया कष्ट सहने को तपस्या कहते है, पर तपस्या की जो उत्कृष्ट परिणति है, वह पार्वती के जीवन में दिखाई दे रही है। सप्तर्षि उनसे कहते हैं, "पार्वती, सुना तुमने? शंकर जी ने तो काम को जलाकर भस्म कर दिया।" सप्तर्षियों को विश्वास था कि यह समाचार सुनकर पार्वती को बड़ी निराशा होगी, दु:ख होगा, क्योंकि यह शंकर जी में विवाह करने के लिये तप कर रही है और विवाह के मूल में तो काम है। जब काम ही भस्म हो गया, तो विवाह की क्या सार्थकता रह गई? पर उस समाचार को सुनकर भी पार्वती ज्यों-की-त्यों शान्त रहीं। सप्तर्षियों को बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्हें लगा कि शायद यह समाचार इनको पहले ही मिल चुका है, इसीलिए कोई प्रभाव नहीं पड़ा। पूछ बैठे – यह समाचार तुम्हें मिल चुका है क्या? बोलीं – हाँ महाराज, मुझे तो यह समाचार अपने जीवन के आरम्भ में ही मिल चुका है। क्या आप लोगों को अभी मिला? आप लोगों के लिए यह समाचार नया है, पर मेरे लिए तो यह चिर पुरातन है। – कैसे? वे बोलीं –

हमरे जान सदा सिव जोगी।
अज अनवद्य अकाम अभोगी।।१/९०/३

– हमारी समझ से तो शिव जी सदा से ही योगी, अजन्मा, अनिन्द्य, कामरहित और भोगहीन हैं ।

विवाह और अकाम शिव से! काम के साथ तप का सामंजस्य, यही नारद जी का कौतुक है । पार्वती जी बोली – यदि मैंने शिव जी को ऐसा समझकर ही मन-वाणी तथा कर्म से प्रेमसहित उनकी सेवा की है, तो हे मुनीश्वरो, सुनिये, कृपानिधान प्रभु मेरी प्रतिज्ञा को सत्य करेंगे –

जो मैं सिव सेये अस जानी ।
प्रीति समेत कर्म मन बानी ।।
तौ हमार पन सुनहु मुनीसा ।
करिहहिं सत्य कृपानिधि ईसा ।। १/९०/४-५

क्यों? बोलीं – हे तात, अग्नि का तो यह सहज स्वभाव ही है कि बर्फ उसके समीप कभी जा ही नहीं सकता और यदि कभी गया, तो अवश्य ही नष्ट हो जायेगा, महादेव और कामदेव के विषय में भी ऐसा ही समझना चाहिए –

तात अनल कर सहज सुभाउ ।
हिम तेहि निकट जाइ नहिं काऊ ।।
गएँ समीप सो अवसि नसाई ।
असि मन्मथ महेस की नाई ।। १/९०/७-८

आप लोगों को लग रहा है कि शंकर जी ने काम को अब जलाया है । यह तो वैसा ही है जैसे शीत जब तक आग के पास नहीं जाता, तब तक वह शीत है । आग के पास जाते ही वह नष्ट हो जाता है । इसी तरह काम तो तभी तक काम है, जब तक वह शंकर जी से दूर रहता है, जैसे ही वह समीप गया, जलकर भस्म हो गया । शंकर जी तो सदा एकरस हैं । यही समझकर मैंने शिव को पति के रूप में पाने का व्रत लिया है, शिव मुझे अवश्य मिलेंगे ।

शिव और पार्वती का मिलन होता है, परिणय होता है । सन्त की यही विशेषता है । नारद जी ने अपना चमत्कार न दिखाकर, आशीर्वाद का प्रभाव न दिखाकर या भविष्यद्रष्टा के रूप में भविष्य न बताकर पार्वती को तपस्या की ओर प्रेरित किया । यहाँ नारदजी के चरित्र में सकामता को निष्कामता की दिशा में मोड़ देने की अद्भुत शैली दिखाई देती है ।

यही बात महाराज दशरथ के जीवन में भी है । महाराज दशरथ के मन में पुत्र की कामना है । यह कामना भी प्राय: संसार में सभी के मन में रहती है –

एक बार भूपति मन माहीं ।
भै गलानि मोरे सुत नाहीं ।। १/१८९/१

महाराज दशरथ के मन में खेद हुआ कि मेरा कोई पुत्र नहीं है । वे अपनी इस पुत्रैषणा को लेकर गुरु वशिष्ठ के पास गये । इसका अभिप्राय यह है कि यदि भौतिक कामनाओं को गुरु के सामने रखा जायगा, तो गुरु तो वैद्य हैं, वे तो शिष्य को स्वस्थ करने की चेष्टा करेंगे ही । ❖ (क्रमश:) ❖

सँभलना, अब है मेरी बारी

गुलाब खण्डेलवाल

सँभलना, अब है मेरी बारी ।
अब तक तुमने लोगों की;
बिगड़ी बहुत सुधारी ।।

क्या यदि, प्रभु! कबीर, तुलसी को
तुमने पार उतारा;
क्या न उन्होंने पहले ही था
तुम पर तन-मन वारा ।
मैं तो तब जानूँ, मुझ पर भी
हो यदि कृपा तुम्हारी ।। सँभलना०।।

आड़ तुम्हारी लेकर मैंने
अपने को ही गाया;
पूजा में भी मन प्रसाद को
रहता है अकुलाया ।
पल भर भी न कभी करता हूँ
आगे की तैयारी ।। सँभलना०।।

पर जो भजते तुम्हें, उन्हीं की
यदि तुम सुध लेते हो;
जो श्रद्धा-विश्वास-रहित
उन पर न ध्यान देते हो ।
तो स्वार्थी यदि कहूँ तुम्हें भी,
क्या अनर्थ हो भारी ।। सँभलना०।।

सँभलना, अब है मेरी बारी ।
अब तक तुमने लोगों की;
बिगड़ी बहुत सुधारी ।।

माँ के सान्निध्य में (६३)

अज्ञात

(भगवान श्रीरामकृष्ण की लीला-सहधर्मिणी माँ श्री सारदा देवी का जीवन दैवी-मातृत्व का जीवन्त-विग्रह था । उनके प्रेरणादायी वार्तालापों के संकलन रूप मूल बँगला ग्रन्थ 'श्रीश्री मायेर कथा' से रामकृष्ण मठ, इलाहाबाद के स्वामी निखिलात्मानन्द जी द्वारा किया हुआ हिन्दी अनुवाद हम अनेक वर्षों से प्रकाशित कर रहे थे । इसी बीच अब तक प्रकाशित अधिकांश अंशों का 'माँ की बातें' नाम से पुस्तकाकार प्रकाशन भी हो चुका है । प्रस्तुत है पूर्वोक्त ग्रन्थ के ही द्वितीय भाग से आगे के अप्रकाशित अंशों का अनुवाद । – सं.)

श्री माँ से मंत्रदीक्षा पाने के कुछ दिन बाद लालमोहन (कपिलेश्वरानन्द) के मन में सन्देह हुआ, "यह मैंने क्या किया? एक महिला से दीक्षा ले ली?" क्रमशः उनके मन में बड़ी अशान्ति उत्पन्न हो गयी । बाद में उन्होंने निश्चय किया कि ठाकुर यदि एक दिन उन्हें यह विषय न समझा दें, तो वे मंत्र को त्याग देंगे । अगले दिन वे पूजनीय बाबूराम महाराज (स्वामी प्रेमानन्द) के आदेश पर दूध लेकर कलकत्ते में श्री माँ के घर गये । माँ को प्रणाम करके खड़े होने पर माँ ने उनसे कहा, "देखो, मैंने तुम्हें मंत्र नहीं दिया, ठाकुर ने दिया है ।" कुछ दिन बाद उनके मन में फिर सन्देह जागा । मन में आया, "यदि ठाकुर ने ही मंत्र दिया हो, तो यदि हरेन बाबू आकर बोले कि 'मुझे माँ से शक्ति मिली है', तब मैं सब सत्य मान लूँगा ।" इसके कुछ दिन बाद उत्सव के समय हरेन बाबू ने माँ को प्रणाम करने के बाद मठ में आकर लालमोहन से कहा, "आज मुझे माँ से विशेष शक्ति मिली है ।" तब उनका सारा सन्देह मिट गया ।

एक बार किसी कारणवश 'उद्बोधन' के रसोइये ब्राह्मण को हटा देने की बात उठी । परन्तु श्री माँ की सेवा में असुविधा होगी, यह सोचकर वहाँ के अध्यक्ष उसे जबाब नहीं दे सके । यह सुनकर माँ ने कहा, "तुम लोग संन्यासी हो, त्याग ही तुम लोगों का लक्ष्य है; तुम लोग एक नौकर का भी त्याग नही कर सकते?"

मठ के किसी नौकर द्वारा बातचीत में अभद्रता दिखाने पर एक महाराज ने उसे थप्पड़ मार दिया था । यह बात माँ के कानों तक पहुँचने पर उन्होंने कहा था, "वे लोग तो संन्यासी है, पेड़ो के नीचे रहेगे । उन लोगों का मठ, मकान, नौकर! और ऊपर से नौकर को मारना!"

ब्रजेश्वरानन्द तपस्या करने उत्तराखण्ड जाना चाहते थे । इसके लिए वे माँ की अनुमति माँगने गये । सुनकर माँ ने कहा, "यह कार्तिक का महीना है, यम के चारों द्वार खुले हैं; मैं माँ होकर कैसे तुम्हें इस समय जाने को कहूँ?"

एक बार एक व्यक्ति ने बड़ा गर्हित कर्म किया था । किसी किसी ने माँ को उसे कठोर दण्ड देने के लिए कहा । इस पर वे बोलीं, "मैं माँ जो हूँ, किस प्रकार मैं ऐसी बात कहूँगी?"

एक बार एक भक्त ने माँ से कहा था, "माँ, मैं बड़ा गरीब हूँ । बीच बीच में आपका दर्शन करने आने की इच्छा होती है, परन्तु आपके लिए अपनी इच्छानुसार कुछ ला नहीं सकता, इसीलिए सर्वदा आ नहीं पाता ।" यह सुनकर करुणामयी ने स्नेहपूर्वक कहा, "बेटा, जब आने की इच्छा होगी, तो एक हरीतकी लेकर आ जाना ।"

एक भक्त माँ का दर्शन करने आये थे । माँ ने पूछा, "तुमने क्या मुझसे दीक्षा ली है?" भक्त बोले, "हाँ, माँ । माँ, मैं बड़ा संसारी हूँ । मैने स्वयं तो विवाह नहीं किया, परन्तु भाइयों की पुत्रियों को विदा आदि कराने में व्यस्त रहता हूँ । मेरा क्या होगा माँ?"

माँ ने कहा, "देखूँ ।" यह कहकर उन्होंने भक्त का सीना स्पर्श करने के लिए हाथ बढ़ाया । भक्त शीघ्रतापूर्वक अपने कोट के बटन खोलने लगे । हाथ थोड़ी दूर ले जाने के बाद माँ बोलीं, "रहने दो । और खोलने की जरूरत नहीं है । तुम्हारा हो जायगा, नहीं तो मेरा हाथ नहीं जाता । मैंने तुम्हें अपनी कोई चीज तो दी नहीं – ठाकुर की दी हुई चीज थी । नहीं हुआ तो उन्हीं को आना होगा । मैं तो बेटा, व्यवसाय करने नहीं बैठी हूँ । देखो न, कार्तिक (उनके गुरु) को नाराज कर दिया । अच्छा तो हुआ नहीं, बुरा हो गया ।"

एक त्यागी भक्त की माता द्वारा अपने पुत्र को संसार में लौटा ले जाने के प्रस्ताव पर माँ ने कहा, "त्यागी पुत्र गर्भ में धारण करना बड़े सौभाग्य की बात है । लोग तो एक पीतल की कटोरी तक की माया त्याग नहीं पाते, और संसार त्याग करना क्या सहज बात है! तुम उसकी माँ हो, तुम्हें चिन्ता क्या है? साधु होकर भी वह तुम लोगों की सेवा करेगा ।"

ठाकुर का प्रसंग उठने पर माँ ने एक भक्त को कहा, "सचमुच ही वे भगवान हैं, जीवों के दुःख के कारण देह धारण करके आये थे – जैसे राजा छद्मवेश में नगर-भ्रमण को निकलते हैं और लोगों को थोड़ा ज्ञात होते ही लौट जाते हैं ।"

जयरामबाटी में अन्तिम बार रात को नौ बजे रसोईदारिन ब्राह्मणी ने आकर कहा, "कुत्ता छू गया है, स्नान कर आऊँ ।" माँ बोलीं, "इतनी रात को स्नान मत करो, हाथ-पाँव धोने के बाद कपड़े बदल लो ।" रसोईदारिन ने कहा, "इससे क्या हो

जायेगा?'' माँ बोलीं, ''तो फिर गंगाजल ले लो।'' इससे भी उनका मन सन्तुष्ट नहीं हुआ। इसके बाद माँ ने कहा, ''तो फिर मुझे स्पर्श कर लो।''

ज्ञानानन्द बीच बीच में विभिन्न प्रकार के व्यंजन बनाकर नवासन से जयरामबाटी ले जाया करते थे। मार्ग में एक ग्राम के कुछ लोग सर्वदा उन्हें वैसा करते देखकर विस्मित होते थे। एक दिन उनमें से एक जन ने कहा, ''अहा, कितने मोह में पड़े हो!'' ज्ञान द्वारा जाकर यही बात माँ को सुनाने पर वे उत्तेजित होकर बोलीं, ''देखो बेटा, ये लोग संसारी जीव हैं, नरक के कीट हैं, इनकी जाति ही अलग है। ये लोग बारम्बार आवागमन करेंगे और संसार में पड़कर सड़ेंगे। यदि कभी भगवान की कृपा हुई, तभी मुक्त होंगे।''

एक गृही शिष्य (राजेन्द्र लाल दे) ने माँ से पूछा था, ''माँ, मैं कायस्थ हूँ। ठाकुर को अन्नभोग दे सकता हूँ या नहीं?'' माँ बोलीं, ''बेटा, तुम उनकी सन्तान हो। अन्नभोग देना, इसमें दोष क्या है? अवश्य दे सकते हो।''

ढाका के श्रीयुत पीताम्बर नाथ जयरामबाटी में माँ के घर के बरामदे में बैठकर उनके साथ बातें कर रहे थे। माँ घर के भीतर थीं; वे बोलीं, ''बेटा, अन्दर बैठकर बोलो।'' भक्त ने कहा, ''माँ, मैं यहीं (बरामदे में) बैठता हूँ, मैं छोटी जाति का हूँ!'' इस पर माँ बोलीं, ''कौन कहता है कि तुम छोटी जाति के हो? तुम मेरे बच्चे हो, घर में आकर बैठो।''

'उद्‌बोधन' में एक दिन माँ की आपार करुणा का प्रसंग चल रहा था। योगेन-माँ ने हँसते हुए माँ की ओर देखकर कहा, ''माँ हम लोगों से चाहे जितना भी प्रेम क्यों न करें, तो भी वह ठाकुर के समान नहीं है। लड़कों के लिए उनकी जो व्याकुलता और जो प्रेम देखने को मिला था, उसका वर्णन नहीं किया जा सकता।'' माँ बोलीं, ''सो क्यों नहीं होगा? उन्होंने तो कुछ चुने हुए लड़के ले लिए थे – वह भी एक बार इधर मंत्र देकर और एक बार उधर मंत्र देकर। और मेरे पास बिल्कुल चींटियों के दल को ही ढकेल दिया है।''

ठाकुर के विषय में एक दिन माँ बोलीं, ''ठाकुर इतने बड़े त्यागी थे, तो भी मेरे लिए उनके मन में चिन्ता थी। एक दिन उन्होंने मुझसे पूछा, 'कितने रुपये होने से तुम्हारा हाथ खर्च चल जायगा?' 'मैं बोली, यही पाँच-छह रुपये होने से चल जायगा।' इसके बाद उन्होंने पूछा, 'रात को कितनी रोटियाँ खाती हो?' मैं तो लज्जा से गड़ गयी – कैसे बताऊँ! इधर वे बारम्बार पूछ रहे थे, इसीलिए बताना पड़ा, 'यही कोई पाँच-छह खाती हूँ'।''

एक दिन राधू ने नाराज होकर माँ से कहा, ''तू क्या जानती है! पति का मर्म तू क्या समझती है!'' यह सुनकर माँ हँसते हुए बोलीं, ''ठीक ही तो है जी! मेरे पति तो दिगम्बर संन्यासी थे।''

एक दिन बातचीत के दौरान केशवानन्द ने माँ से कहा था, ''आप लोगों के बाद अब षष्ठी, शीतला आदि देवियों को कोई नहीं मानेगा।'' माँ बोलीं, ''क्यों नहीं मानेगा? वे भी तो मेरी ही अंश हैं।''

एक अन्य दिन केशवानन्द ने माँ से कहा, ''माँ, या तो आप देश के लोगों की मति-गति ठीक कर दीजिए, नहीं तो कार्य की ओर से मेरा रुझान निकाल दीजिए। गढ़नेवाला कोई नहीं है, सभी बिगाड़ना ही चाहते हैं।'' इस पर माँ ने उत्तर दिया, ''बेटा, ठाकुर कहते थे, 'मलय की हवा लगने पर जिन वृक्षों में कुछ सार है, वे सभी चन्दन हो जाते हैं।' मलय वायु बह रही है, अब बाँस तथा केलों को छोड़कर सभी चन्दन हो जायेंगे।''

किसी ने पूछा, ''माँ, इन (आपके सगे) लोगों ने आपका इतना संग किया है, तो भी क्यों इन्हें थोड़ा-सा भी ज्ञान नहीं होता?'' माँ बोलीं, ''सभी बाँस और सेमल के वृक्ष हैं, चन्दन के पास रहने से क्या होगा? सारवान वृक्ष होना चाहिए।''

एक भक्त महिला ने श्री माँ से पूछा, ''माँ, आप भगवती हैं, यह बात हम समझ क्यों नहीं पातीं?'' माँ बोलीं, ''सभी कैसे पहचान सकेंगे, बेटी? घाट पर एक हीरा पड़ा था। सब लोग उसे पत्थर समझकर उससे पाँव घिसते और स्नान करके चले आते। एक दिन एक जौहरी ने उसी घाट पर आकर देखा और पहचाना कि वह एक महा-मूल्यवान हीरा है।''

एक बार माँ जयरामबाटी से कलकत्ते रवाना होने की थीं, उसी समय सूर्य मामा की माँ ने आकर कहा, ''बेटी सारदा, हम लोगों को भूलना मत, फिर आना।'' माँ अपने घर के भीतर की भूमि को स्पर्श करके प्रणाम करके कह रही हैं – **जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी**।

बड़े अप्रत्याशित रूप से एक खास बड़े आदमी के यहाँ से एक भक्त युवक के लिए विवाह का प्रस्ताव आया। वे लोग काफी रुपये देना चाहते थे। इससे युवक के लगभग पूरे जीवन का धनाभाव मिट जाता। युवक उस समय एम. ए. पास करके एक स्कूल की हेडमास्टरी कर रहा था। उसका मन भोग-आकांक्षा से मुक्त नहीं था। इसीलिए (मई, १९१५ में) उसने श्री माँ का मत जानने के लिए जयरामबाटी में उनके सामने विवाह की बात उठायी। सब सुनने के बाद माँ बोलीं, ''बेटा, तुम तो अच्छी तरह हो। क्यों संसार की अग्नि में दग्ध होने जाओगे? तुम अच्छा काम कर रहे हो। बहुत-से लड़के तुम्हारी सहायता से पढ़ना-लिखना कर रहे हैं। वे सब अच्छे होंगे और तुम्हारा भी कल्याण होगा।'' युवक ने कहा, ''माँ, मन बीच बीच में चंचल होता है, भोग की ओर जाता है, इसीलिए भय होता है।'' इस पर माँ बोलीं, ''तुम जरा भी

भय मत करो । मैं कहती हूँ, कलियुग में मन का पाप पाप नहीं है । तुम निश्चिन्त रहो, तुम्हारे लिए भय की कोई बात नहीं ।'' माँ की यह अभय-वाणी सुनने के बाद से भक्त ने फिर विवाह के बारे में नहीं सोचा और वह कभी मन के सामयिक उद्वेग से भी विचलित नहीं हुआ ।

एक दिन निवेदिता बोर्डिंग स्कूल की एक बालिका सबेरे श्री माँ के पास आयी । माँ उस समय जप कर रही थीं । उन्होंने उससे बोर्डिंग की लड़कियों, कालू नाम के एक लड़के के विषय में और लड़की जिस रास्ते होकर आयी थो, उसके आसपास क्या देखा आदि विविध बातें पूछने लगीं । परन्तु लड़की सभी बातों का ठीक ठीक उत्तर नहीं दे पा रही है, यह देखकर माँ ने उससे कहा, ''देखो बेटी, जहाँ से होकर जाओगी, उसके चारों ओर क्या हो रहा है या नहीं हो रहा है, सब देखकर रखना; और जहाँ रहोगी, वहाँ की भी सारी जानकारी होनी चाहिए, परन्तु किसी से कुछ कहना मत ।''

एक शाम को बोर्डिंग की लड़कियों के माँ के पास आने पर गोलाप-माँ ने आकर कहा, ''माँ, इन लोगों को जरा ठाकुर की बाते कहो न ।'' इसके उत्तर में माँ बोलीं, ''मैं भला ठाकुर की बातें क्या कहूँगी? कितनी सब बातें मास्टर महाशय द्वारा लिखित 'वचनामृत' में निकल गयी हैं । अहा, मास्टर महाशय का स्वास्थ्य ठीक रहने पर और भी न जाने कितने उपदेश निकलते और लोगों का कितना उपकार होता! तो भी अब तक जो निकला है, सब अमूल्य धन है । मैं भला क्या जानती थी कि ठाकुर की छोटी छोटी बातें बाद में वेद-वाक्य हो जायेगी! उनकी उपदेश देने की प्रणाली कितनी सुन्दर थी। हालदार पुकुर देखकर उन्होंने न जाने कितनी बातें कही थीं । इसी प्रकार जो कुछ भी सामने देखते, उसी के माध्यम से कुछ बोलना उनका स्वभाव था ।'' एक भक्त ने माँ से पूछा, ''ठाकुर ने कहा है, 'यहाँ जो लोग आयेंगे, उनका यह आखिरी जन्म है ।' फिर स्वामीजी ने कहा है, 'संन्यास लिए बिना किसी की भी मुक्ति नहीं होगी ।' तो फिर गृही भक्तों के लिए क्या उपाय है?'' इसके उत्तर में माँ बोलीं, ''हाँ, ठाकुर ने जो कहा है वह भी ठीक है, फिर स्वामीजी ने जो कहा है वह भी ठीक है । गृहस्थों के लिये बाह्य संन्यास की जरूरत नहीं है, उन लोगों का अन्त:संन्यास अपने आप होगा । तुम लोगों को भय कैसा? उनके शरणागत होकर पड़े रहना और सर्वदा समझना कि ठाकुर तुम लोगों के पीछे हैं ।''

१९१० (ई.?) में साधन-भजन के विषय में माँ ने एक त्यागी भक्त को कहा था, ''सुबह-शाम बैठना और सिर को ठण्डा रखकर जप-ध्यान करना । मिट्टी खोदना इसकी अपेक्षा आसान कार्य है ।'' फिर ठाकुर का चित्र दिखाते हुए वे बोलीं, ''उनकी कृपा हुए बिना कुछ भी न होगा ।'' आश्रम के कार्यों में व्यस्त रहने के कारण नियमित जप-ध्यान में बाधा पड़ सकती है – यह बताने पर माँ ने कहा, ''कार्य और किसका है? कार्य भी तो उन्हीं का है ।'' बाद में उन्होंने और भी कहा, ''इसके बाद मन ही गुरु होकर उपदेश देगा ।''

एक बार बातचीत के दौरान माँ ने कहा था, ''मैं भले की भी माँ हूँ, बुरे की भी माँ हूँ ।'' वे अपनी आश्रित सन्तानों को कहतीं, ''तुम लोगों को चिन्ता कैसी?'' ❖ (क्रमशः) ❖

सदस्यता के नियम

(१) पत्रिका के नये सदस्य किसी भी माह से बनाये जाते हैं। यदि पिछले किसी अंक से बनना हो, तो उसका उल्लेख करें।

(२) अपना नाम तथा पिनकोड सहित पूरा पता स्पष्ट रूप से अवश्य लिखें। नये सदस्य हों, तो लिखें – 'नया सदस्य'।

(३) अपनी पत्रिका को निरन्तर चालू रखने हेतु अपनी सदस्यता की अवधि पूरी होने के पूर्व की उसका नवीनीकरण करा लें।

(४) पत्रिका न मिलने की शिकायत माह पूरा होने पर ही करें। उससे पहले प्राप्त शिकायतों पर ध्यान नहीं दिया जायेगा। अंक उपलब्ध होने पर ही पुनर्प्रेषित किया जायेगा।

(५) अंक सुरक्षित पाने हेतु प्रति अंक रू. ३/– का अतिरिक्त खर्च वहन करके इसे वी.पी. पोस्ट से मँगाया जा सकता है। यह राशि प्रति माह अंक लेते समय पोस्टमैन को देनी होगी, अतः इसे हमारे कार्यालय को न भेजें।

(६) सदस्यता, एजेंसी, विज्ञापन या अन्य विषयों की जानकारी के लिये 'व्यवस्थापक, विवेक-ज्योति कार्यालय' को लिखें।

अस्पृश्यता का रोग

स्वामी सत्यरूपानन्द

कलकत्ते में दक्षिणेश्वर का प्रसिद्ध काली मंदिर भगवान श्रीरामकृष्ण देव का साधना स्थल रहा है। श्री रामकृष्ण देव का जन्म एक उच्च ब्राह्मण कुल में हुआ था। साधना की एक अवस्था में उनके मन में यह विचार आया कि ऊँच नीच और छूआ-छूत का भेद भगवान-लाभ के रास्ते की बहुत बड़ी बाधा है। मनुष्य यदि अपने मन में ऊँच नीच का भेद रखता है तथा मनुष्य के बीच छूत अछूत का भाव रखता है तो उसकी आध्यात्मिक उन्नति नहीं हो सकती।

इस विचार के आते ही उन्होंने अपने ब्राह्मणत्व का अभिमान दूर करने तथा सब के प्रति समदृष्टि रखने का उपाय किया। उन दिनों दक्षिणेश्वर के मंदिर में अछूतों कगालों आदि को प्रति दिन भोजन दिया जाता था। क्योंकि भोजन सदाव्रत के रूप में दिया जाता था। अतः वहाँ शूद्र अन्त्यज आदि सभी जाति के लोग भोजन करने आते थे। श्रीरामकृष्ण देव ने इन अछूतों, शूद्रों, चाण्डालों आदि की जूठी पत्तलें उठाई, उन्हें सिर पर रखकर नदी में फेंकने ले गये। इतना ही नहीं उनके मन में जाति पाँति का भेद न रह जाय इसलिए उन्होंने उन शूद्रों के जूठे अन्न का कुछ भाग स्वय ग्रहण किया।

एक दूसरे अवसर पर उन्होंने दक्षिणेश्वर मंदिर के एक भंगी के घर का शौचालय स्वयं अपने हाथों से साफ किया, जिससे कि उनके मन में भगी के प्रति घृणा या हीन भाव न रहे।

श्रीरामकृष्ण देव के पट्टशिष्य स्वामी विवेकानन्द अपने परिव्राजक जीवन में भारतवर्ष के कई स्थानों में भंगियों और अछूतों के अतिथि रहे। उनके साथ भोजन किया। खेतड़ी राज्य में एक बार एक चमार ने उन्हें आटा, दाल आदि का सीधा देकर कहा - महाराज, मैं नीची जाति का हूँ, अतः आप मेरा यह सीधा लेकर स्वय भोजन बनाकर ग्रहण करें। इस प्रकार मैं आपकी सेवा कर सकूँगा। स्वामीजी ने उससे कहा – नहीं भाई, मेरे मन में ऊँच नीच का भेद नहीं है। तुम अपने हाथों से भोजन बनाकर मुझे खिलाओ और स्वामीजी ने चमार के हाथों का भोजन आनंद पूर्वक ग्रहण किया।

हमारे देश के असंख्य महापुरुषों का व्यवहार इसी प्रकार का रहा है। रामानुज, चैतन्य, नानक, कबीर आदि सभी महापुरुषों के मन में छूत अछूत का भाव नहीं था। उन्होंने सबको समान दृष्टि से देखा था। उनके लिये कोई भी अस्पृश्य नहीं था।

वेदान्त दर्शन तो डंके की चोट पर यह घोषणा करता है कि सभी प्राणियों में वही एक ब्रह्म या ईश्वर विराजमान हैं। अतः किसी को अछूत कहना ईश्वर का अपमान करना है। ईश्वर की निन्दा है और ईश्वर की निन्दा पाप है, अधर्म है। आध्यात्मिक अपराध है।

व्यावहारिक दृष्टि से देखें तो छूआ छूत और अस्पृश्यता का भाव विकृत मानसिकता का लक्षण है। छूआ-छूत मानने वाले व्यक्ति का मन कुठाओं से ग्रस्त होता है। यह एक प्रकार का मानसिक रोग है। ऐसा व्यक्तित्व असतुलित तथा विगठित हो जाता है। उसके मन की ग्रंथियाँ खुल नहीं पाती। अशुचिता और अपराध भावना उसके हृदय में घर कर लेती है। इस कारण वह अपने परिवार के लोगों से सबंधियों, मित्रों आदि से भी भेद भाव करने लगता है। उसका मन सदैव संदेह और अनिश्चय की स्थिति में रहता है। इस प्रकार वह व्यक्ति सामान्य समाज में स्वयं अस्पृश्य और अकेला हो जाता है। कोई भी भला आदमी उससे सबध नहीं रखना चाहता।

अतः धार्मिक, आध्यात्मिक सामाजिक एव वैयक्तिक किसी भी दृष्टि से, किसी भी धरातल पर अस्पृश्यता उचित नहीं है। यह एक मानसिक विकार है, धार्मिक और आध्यात्मिक अपराध है, सामाजिक पाप है। अतः हम सबको सावधानीपूर्वक अस्पृश्यता के इस महारोग से बचना चाहिए।
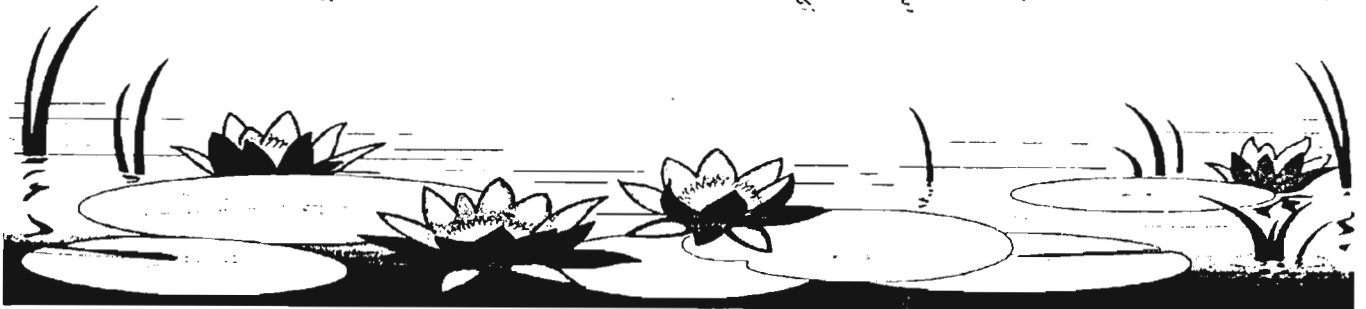
आचार्य रामानुज (११)

स्वामी रामकृष्णानन्द

(स्वामी विवेकानन्द के अमेरिका से वापस लौटने पर मद्रास नगर की जनता ने उनसे हार्दिक अनुरोध किया कि उस प्राचीन नगरी में भी अपने युगधर्म-प्रचार का कार्य आरम्भ करें । इसी के उत्तर में उन्होंने अपने गुरुभाई स्वामी रामकृष्णानन्द को वहाँ भेजा । उन्होंने वहाँ की स्थानीय आध्यात्मिक परम्परा से देशवासियों का परिचय कराने के लिए सद्य:प्रकाशित बँगला मासिक 'उद्बोधन' के लिए श्री रामानुजाचार्य के जीवन पर एक लेखमाला लिखी, जो बाद में पुस्तकाकार भी प्रकाशित हुई । 'विवेक-ज्योति' के पाठकों का भी इन प्रात:स्मरणीय महापुरुष के जीवन तथा भावधारा से परिचय कराने हेतु हम इसके हिन्दी अनुवाद का धारावाहिक प्रकाशन कर रहे हैं । – सं.)

८. स्तोत्र-रत्न

श्री रामानुज को देखने के बाद से ही आलवन्दार सदा उनके लिये चिन्तित रहा करते थे । उनके कल्याणार्थ वे सर्वदा श्रीहरि से प्रार्थना करते । यामुनाचार्य प्रतिदिन प्रभु के चरणों में निवेदन करते कि वे यादव का शिष्यत्व छोड़कर परम वैष्णव मार्ग अपना लें । रामानुज के प्रति उनका पुत्रवत् स्नेह था । एक दिन उनकी कल्याण-कामना करते हुए उन्होंने अपूर्व माधुर्यपूर्ण एक स्तोत्ररत्न रचकर त्रिलोकपति के चरणों में अर्पित किया । आज भी इस स्तोत्रमाला के सौरभ से दिग्दिगन्त सुवासित है । अपने हृदय का गम्भीर अनुराग तथा प्रगाढ़ प्रेम शायद ही अन्य किसी ने इतने सुमधुर भाव से व्यक्त किया होगा । सुहृदय भावुकजन इसका आस्वादन करके ही समझ जाएँगे कि इसमें विष्णु-पाद-नि:स्रित पुण्यसलिला गंगा की पवित्रता तथा शीतलता विद्यमान है और इसका प्रत्येक वर्ण मानो सुधासिक्त होकर श्लोक के रूप में परिणत हुआ है । इसमें प्रारम्भ के कुछ श्लोक उनके गुरुदेव पितामह नाथमुनि की श्रीपाद-वन्दना में रचित हुए हैं –

भगवद्वन्दनं स्वाद्यं गुरुवन्दनपूर्वकम् ।
क्षीरं शर्करया युक्तं स्वदते हि विशेषत: ।।*

– दूध स्वभाव से ही मधुर होने पर भी शक्कर मिलाने से वह और भी स्वादिष्ट हो जाता है, इसी प्रकार गुरु-वन्दना के साथ ईश्वर की वन्दना करने पर वह अत्यन्त सुस्वादु हो जाता है ।

समग्र स्तोत्र निम्नलिखित है –

नमोऽचिन्त्याद्भुताक्लिष्ट-ज्ञानवैराग्यराशये ।
नाथाय मुनयेऽगाध भगवद्भक्ति-सिन्धवे ।।१।।

– मैं अपने उन प्रभु नाथमुनि को प्रणाम करता हूँ, जिनकी ज्ञान-वैराग्यराशि अकल्पनीय, अद्भुत तथा अवच्छिन्न है और जो भगवद्भक्ति के अतल सागर के स्वरूप हैं ।

तस्मै नमो मधुजिदंघ्रिसरोजतत्त्व-
ज्ञानानुराग-महिमातिशयान्तसीम्ने ।
नाथाय नाथमुनयेऽत्र परत्र चापि
नित्यं यदीयचरणौ शरणं मदीयम् ।।२।।

– मैं अपने उन प्रभु नाथमुनि को नमन करता हूँ, जो भगवान विष्णु के पादपद्मों की ज्ञान-भक्ति से जनित परम महिमा के चरम सीमा-स्वरूप हैं और जिनके चरण इहलोक तथा परलोक में मेरे नित्य आश्रय हैं ।

भूयो नमोऽपरिमिताच्युतभक्तितत्त्व-
ज्ञानामृताधि-परिवाहशुभैर्वचोभि: ।
लोकेऽवतीर्ण-परमार्थ-समग्रभक्ति-
योगाय नाथमुनये यमिनां वराय ।।३।।

– मैं पुन: उन नाथमुनि को नमन करता हूँ, जो संयमी जनों में श्रेष्ठ हैं और जो हरिभक्ति के तत्त्वज्ञान रूपी अपार सुधासमुद्र से उत्थित महाप्लावन स्वरूप लोकहितकर उपदेशों को लेकर जीवों के परमार्थसाधन हेतु समग्र भक्तियोग के रूप में इस जगत् में अवतीर्ण हुए थे ।

तत्त्वेन यश्चिदचिदीश्वरतत्स्वभाव-
भोगापवर्ग-तदुपायगतीरुदार: ।
सन्दर्शयन्निरमिमीत-पुराणरत्नं
तस्मै नमो मुनिवराय पराशराय ।।४।।

– मैं उन उदारचित महर्षि पराशर को प्रणाम करता हूँ; जिन्होंने जड़-चेतन, ईश्वर तथा उनका स्वरूप, भोग-मोक्ष तथा उनकी प्राप्ति के उपयुक्त उपायों का वर्णन करते हुए पुराणरत्न (विष्णु पुराण) की रचना की है ।

माता-पिता-युवतयस्तनया विभूति:
सर्वं यदेव नियमेन मदन्वयानाम् ।
आद्यस्य न: कुलपतेर्बकुलाभिरामं
श्रीमत्तदंघ्रियुगलं प्रणमामि मूर्ध्ना ।।५।।

– मैं अपने आदि कुलगुरु महात्मा परांकुश के बकुलपुष्प के समान सुशोभित उन चरणों में मस्तक रखकर प्रणाम करता हूँ, जो चिरकाल से मेरे वंश के माता, पिता, युवती, सन्तान, दास, धन, रत्न आदि के रूप में विराज रहे हैं ।

यन्मूर्ध्नि मे श्रुतिशिरस्सु च भाति यस्मिन्
अस्मान्मनोरथपथ: सकल: समेति ।
स्तोष्यामि न: कुलधनं कुलदैवतं तत्
पादारविन्दमरविन्द-विलोचनस्य ।।६।।

* वेदान्तदेशिक कृत स्तोत्ररत्न भाष्यम्, १

– जो मेरे तथा वेदों के मस्तक पर (उपनिषदों में) सर्वदा विराजते हैं, जो मेरे कुलदेवता तथा मेरे वंशपरम्परा से प्राप्त धन हैं और हमारी समस्त कामनाओं की धारा जिनमें पहुँचती हैं, मैं उन्हीं कमलनयन प्रभु के पादपद्मों का गुणगान करूँगा।

तत्त्वेन यस्य महिमार्णव-शीकराणुः
शक्यो न मातुमपि शर्वपिता-महाद्यैः ।
कर्तुं तदीय-महिमस्तुतिमुद्यताय
मह्यं नमोऽस्तु कवये निरपत्रपाय ।।७।।

– जिनके महिमासागर का बिन्दुमात्र भी यथार्थ रूप से आकलन करने में ब्रह्मा, शिव आदि भी समर्थ नहीं हैं, मेरे समान निर्लज्ज कवि उनकी महिमा-कीर्तन करने को उद्यत हुआ है, अतः मुझे भी नमस्कार है।

यद्वा श्रमावधि यथामति वाप्यशक्तः
स्तौम्येवमेव खलु तेऽपि सदा स्तुवन्तः ।
वेदाश्चतुर्मुखमुखाश्च महार्णवान्तः
को मज्जतोरणुकुलाचलयोर्विशेषः ।।८।।

– अथवा अक्षम होने पर भी मैं यथासाध्य यथामति उनकी स्तुति करूँगा, क्योंकि वेद तथा ब्रह्मा आदि देवगण भी ऐसा ही किया करते हैं। महासागर में तो अणु हो या विशाल पर्वत, दोनों ही समान रूप से डूब जाते हैं।

किं चैष शक्त्यतिशयेन न तेऽनुकम्प्यः
स्तोतापि तु स्तुतिकृतेन परिश्रमेण ।
तत्र श्रमस्तु सुलभो मम मन्दबुद्धेः
इत्युद्यमोऽयमुचितो मम चाब्जनेत्र ।।९।।

– अन्य स्तुतिकर्ता भी अपनी कवित्व-शक्ति के कारण तुम्हारी कृपा के पात्र होते हों, ऐसी बात नहीं, बल्कि उनके परिश्रम के कारण ही तुम उन पर अनुग्रह करते हो। यदि ऐसा ही है, तो मैं वास्तव में तुम्हारी कृपा पाने की आशा करता हूँ, क्योंकि मन्दबुद्धि होने पर भी हे नलिननेत्र, श्रम मेरे लिये सुलभ होने के कारण यह उद्यम मेरे लिये उचित ही है।

नावेक्ष्यसे यदि ततो भुवनान्यमूनि
नालं प्रभो भवितुमेव कुतः प्रवृत्तिः ।
एवं निसर्गसुहृदि त्वयि सर्वजन्तोः
स्वामिन्न चित्रमिदमाश्रितवत्सलत्वम् ।।१०।।

– हे प्रभो, यदि तुम्हारी दृष्टि न हो तो तीनों लोकों में कोई भी रह पाने में समर्थ नहीं है, फिर वे अपने अपने कार्य करने में भी कैसे सक्षम हो सकते हैं। अतः हे स्वामी, सर्व जन्तुओं के स्वाभाविक मित्र होने के नाते आश्रित जनों के प्रति तुम्हारे ऐसे स्नेह में कुछ भी आश्चर्यजनक नहीं है।

स्वाभाविकानवधिकातिशयेशितृत्वं
नारायण त्वयि न मृष्यति वैदिकः कः ।
ब्रह्मा शिवः शतमखः परमस्वराडि-
त्येतेऽपि यस्य महिमार्णवविप्रुषस्ते ।।११।।

– हे नारायण, कोई वेदज्ञ पण्डित भला कैसे तुम्हें सहज, अनन्त तथा अद्वितीय ईश्वर के रूप में स्वीकार नहीं करेगा? क्योंकि ब्रह्मा, शिव, इन्द्र तथा परब्रह्म भी तुम्हारी महिमा रूपी समुद्र के एक एक बिन्दु के समान हैं।

कः श्रीः श्रियः परमसत्त्वसमाश्रयः कः
कः पुण्डरीकनयनः पुरुषोत्तमः कः ।
कस्यायुतायुतशतैक-कलांशकांशे
विश्वं विचित्र-चिदचित्प्रविभागवृत्तम् ।।१२।।

– तुम्हारे अतिरिक्त लक्ष्मीजी को श्री कौन प्रदान कर सकता है? तुम्हारे अतिरिक्त शुद्ध सत्त्व का आश्रय और कौन हो सकता है? और किसके नेत्र कमल के समान मनोहर हो सकते हैं? पुरुषों में सर्वोत्तम दूसरा कौन है? तुम्हारे अतिरिक्त अन्य किसके अरबवें भाग के अति छोटे अंश के भी अंश से यह जड़-चेतन में विभक्त वैचित्र्यमय विश्व रचित हुआ है?

वेदापहार-गुरपातक-दैत्यपीड़ा-
द्यापद्विमोचनमहिष्ठ फलप्रदानैः
कोऽन्यः प्रजाः पशुपतिः परिपाति कस्य
पादोदकेन स शिवः स्वशिरोधृतेन ।।१३।।

– अपहृत वेद का उद्धार करके, ब्रह्मा के शिरच्छेदन के हेतु महापातक से शिव का उद्धार करके, दैत्यपीड़ा आदि बहुविध संकटों से त्रिभुवन को मुक्त करके और भक्तों को उत्कृष्टतम फल प्रदान करके अन्य किसने विशिष्टता प्रदान की है? अपने मस्तक पर स्थित अन्य किसके चरणोदक द्वारा शिव प्रजाजन का प्रतिपालन किया करते हैं?

कस्योदरे हरविरिंचिमुखः प्रपंचः
को रक्षतीममजनिष्ट च कस्य नाभेः ।
क्रान्त्वा निगीर्य पुनरुद्गिरति त्वदन्यः
कः केन चैष परवानिति शक्यशङ्कः ।।१४।।

– शिव-ब्रह्मा सहित ये तीनों लोक किसके उदर में स्थित है, कौन इनकी रक्षा कर रहा है? किसकी नाभि से इनका जन्म हुआ है? तुम्हारे अतिरिक्त अन्य कौन इसे निगलकर पुनः उगलने में समर्थ है? किसके कारण सृष्टिकर्ता ब्रह्मा भी पराधीन माने जाते हैं?

त्वां शीलरूपचरितैः परमप्रकृष्ट-
सत्त्वेन सात्त्विकतया प्रबलैश्च शास्त्रैः ।
प्रख्यात-दैवपरमार्थ विदां मतैश्च
नैवासुर-प्रकृतयः प्रभवन्ति बोद्धुम् ।।१५।।

– तुम परम उत्कृष्ट सत्त्वगुण द्वारा रचित रूप, शील तथा चरित्र से सम्पन्न हो, अतः तमःप्रधान आसुरी स्वभाव के जीव

तुम्हें जानने में समर्थ नहीं हैं । सात्त्विक शास्त्रों द्वारा ही तुम ज्ञेय हो और वे उन (आसुरी) लोगों के लिये अति दुरूह हैं । जैमिनी, व्यास आदि सुविख्यात धर्माचार्यों तथा आत्मवेत्ताओं की मीमांसा की सहायता से ही तुम्हें जाना जा सकता है, अत: वे किसी भी हालत में तुम्हें नहीं जान सकते ।

उल्लङ्घित त्रिविध सीमसमातिशायि-
सम्भावनं तव परिब्रढिमस्वभावम् ।
मायाबलेन भवतापि निगूह्यमानं
पश्यन्ति केचिदनिशं त्वदनन्यभावा: ।।१६।।

– देश-काल-निमित्त की तीनों सीमाओं के परे तुम्हारा जो महेश्वर स्वभाव सम तथा विषम रूप में स्थित है और तुमने भी जिसे माया द्वारा आच्छन्न कर रखा है, कोई कोई भाग्यवान सर्वदा केवल तुम्हीं में (चित्त को) स्थापित करके उसका दर्शन पाते हैं ।

यदण्डमण्डान्तरगोचरं च यत्
दशोतराण्या-वरणानि यानि च ।
गुणा: प्रधानं पुरुष: परं पदं
परात्परं ब्रह्म च ते विभूतय: ।।१७।।

– अखिल ब्रह्माण्ड, उसके भीतर जो कुछ भी दृष्टिगोचर होता है; जल, अग्नि, वायु, आकाश, अहंकार तथा बुद्धितत्त्व आदि दशाधिक आवरण; सत्त्व, रज:, तम:, मूल प्रकृति, पुरुष, परमपद तथा परात्पर ब्रह्म – ये समस्त तुम्हारी शक्ति के प्रभाव हैं ।

वशी वदान्यो गुणवानृजुश्शुचि:
मृदुर्दयालुर्मधुर: स्थिरस्सम: ।
कृती कृतज्ञस्त्वमसि स्वभावत:
समस्तकल्याण-गुणामृतोदधि: ।।१८।।

– तुम स्वभाव से ही क्रोधजित्, दानशील, गुणवान, सरल, पवित्र, शान्त, दयालु, माधुर्यपूर्ण, समदर्शी, कर्मकुशल, कृतज्ञ और सद्‌गुणामृत के सागर हो ।

उपर्युपर्यब्जभुवोऽपि पुरुषान्
प्रकल्प्य ते ये शतमित्यनुक्रमात् ।
गिरस्त्वदेकैकगुणावधीप्सया
सदा स्थिता नोद्यमतोऽतिशेरते ।।१९।।

– जो समस्त वेदवाक्य, पद्मयोनि ब्रह्मा से सौ गुना अधिक और उससे भी सौ गुना अधिक, इस प्रकार असंख्य पुरुषों की कल्पना किया करते हैं, वे सर्वदा तुम्हारे एक एक गुण की सीमा निर्धारण करने में ही लगे हैं । उनका यह उद्यम कभी समाप्त नहीं होगा ।

त्वदाश्रितानां जगदुद्भवस्थिति-
प्रणाशसंसारविमोचनादय: ।
भवन्ति लीला विधयश्च वैदिका-
स्त्वदीय-गम्भीर-मनोऽनुसारिण: ।।२०।।

– जगत् के सृष्टि-स्थिति-प्रलय, जन्म-मरण से मुक्ति और तुम्हारे चित्त के दुर्बोध्य इच्छानुरूप होनेवाले वैदिक कर्म – ये सब तुम्हारी शरण लेनेवाले भक्तों को लीलामात्र लगते हैं ।

नमो नमो वाङ्मनसातिभूमये
नमो नमो वाङ्मनसैकभूमये ।
नमो नमोऽनन्त महाविभूतये
नमो नमोऽनन्तदयैक-सिन्धवे ।।२१।।

– मन-वाणी से अतीत पुरुष को बारम्बार नमस्कार है, मन-वाणी के एकमात्र आधार को बारम्बार नमस्कार है । अनन्त, अचिन्त्य प्रभावशाली को बारम्बार नमस्कार है । अपार करुणा के एकमात्र सागर को बारम्बार नमस्कार है ।

न धर्मनिष्ठोऽस्मि न चात्मवेदी
न भक्तिमांस्त्वच्चरणारविन्दे ।
अकिंचनोऽनन्यगति: शरण्यं
त्वत्पादमूलं शरणं प्रपद्ये ।।२२।।

– मैं सत्कर्मों का अनुष्ठाता नहीं हूँ, न आत्मज्ञानी हूँ और न ही तुम्हारे पादपद्मों में मेरी भक्ति है, मैं अकिंचन हूँ, तुम्हारे अतिरिक्त मेरी अन्य कोई गति नहीं है । अतएव तुम्हारे शरणागत-रक्षक चरणों के तले मैं शरण लेता हूँ ।

न निन्दितं कर्म तदस्ति लोके
सहस्रशो यन्न मया व्यधायि ।
सोऽहं विपाकावसरे मुकुन्द
क्रन्दामि सम्प्रत्यगतिस्तवाग्रे ।।२३।।

– हे मुकुन्द! पृथ्वी पर ऐसा कोई भी गर्हित कर्म नहीं है, जिसे मैंने हजारों बार न किया हो, अब उनके विषमय फल का भोग करने का समय आ पहुँचा है, अब निरुपाय होकर मैं तुम्हारे ही समक्ष क्रन्दन कर रहा हूँ ।

निमज्जतोऽनन्त भवार्णवान्त:
चिराय मे कूलमिवासि लब्ध: ।
त्वयापि लब्धं भगवन्निदानीम्
अनुत्तमं पात्रमिदं दयाया: ।।२४।।

– अनन्त भवसागर में काफी काल से डूबते डूबते अन्त में तुम्हीं को मैने किनारे के रूप में प्राप्त किया है । हे भगवन्! तुम्हें भी तो अब दया का सर्वोत्कृष्ट पात्र मिल गया है ।

अभूतपूर्वं मम भावि किं वा
सर्वं सहे मे सहजं हि दु:खम् ।
किन्तु त्वदग्रे शरणागतानां
पराभवो नाथ न तेऽनुरूप: ।।२५।।

– अथवा यदि इसमें कोई अभूतपूर्व दु:ख आ पहुँचे, तो मैं उसे सहन करूँगा, क्योंकि दु:ख तो मेरा चिर सहचर है। परन्तु शरणागत यदि तुम्हारे सम्मुख निराश हो, तो वह तुम्हारे अनुरूप नहीं होगा।

निरासकस्यापि न तावदुत्सहे
महेश हातुं तव पादपङ्कजम्।
रुषा निरस्तोऽपि शिशुः स्तनन्धयो
न जातु मातुश्चरणौ जिहासति ।।२६।।

– हे महेश्वर! तुम्हारे भगाने पर भी तुम्हारे पादपद्म त्यागने की इच्छा नही होती, क्योंकि माता यदि नाराज होकर स्तनपायी शिशु को भगाना चाहे, तो भी वह कभी माँ के चरण नहीं छोड़ता।

तवामृतस्यन्दिनि पादपंकजे
निवेशितात्मा कथमन्यदिच्छति।
स्थितेऽरविन्दे मकरन्दनिर्भरे
मधुव्रतो नेक्षुरकं हि वीक्षते ।।२७।।

– तुम्हारे अमृतस्रावी चरण कमलों में एक बार भी जिनका मन लग गया है, वे क्या किसी अन्य वस्तु की इच्छा कर सकते हैं? क्योंकि भ्रमर मधुमय कमल को छोड़कर तिल के फूल की ओर देखता तक नहीं।

त्वदङ्घ्रिमुद्दिश्य कदापि केनचित्
यथा तथा वापि सकृत्कृतोऽञ्जलिः।
तदैव मुष्णात्यशुभान्यशेषतः
शुभानि पुष्णाति न जातु हीयते ।।२८।।

– चाहे जैसे भी हो, यदि कोई तुम्हारे पादपद्मों की ओर उन्मुख होकर अंजलि बनाता है, तो वही अंजलि उसके समस्त अमंगल को दूर कर देती है, प्रभूत मंगल का आनयन करती है और वह कभी विफल नहीं जाता।

उदीर्ण संसार-दवाशुशुक्षणिं
क्षणेन निर्वाप्य परां च निर्वृतिम्।
प्रयच्छति त्वच्चरणारुणाम्बुज-
द्वयानुरागामृत-सिन्धुशीकरः ।।२९।।

– तुम्हारे दोनों लाल चरणकमलों में भक्तिरूपी सुधासमुद्र का एक छोटा-सा कण भी भयंकर संसार-दावानल को क्षण भर में बुझाकर परमानन्द प्रदान करता है।

विलास-विक्रान्त-परावरालयं
नमस्यदार्तिक्षपणे कृतक्षणम्।
धनं मदीयं तव पादपंकजं
कदा नु साक्षात्करवाणि चक्षुषा ।।३०।।

– कब मैं अपने नेत्रों से तुम्हारे उन पादपद्मों का अवलोकन करूँगा, जिन्होंने लीलामात्र से ही स्वग तथा मर्त्य को ढँक लिया था, जो भक्तों के दु:खनाश में सदा व्यस्त रहते हैं और मेरे एकमात्र धन हैं।

कदा पुनः शङ्खरथाङ्गकल्पक-
ध्वजारविन्दाङ्कुश वज्रलाञ्छनम्।
त्रिविक्रम त्वच्चरणाम्बुजद्वयं
मदीय मूर्धानमलङ्करिष्यति ।।३१।।

– हे त्रिविक्रम! तुम्हारे दोनों चरण-कमल शंख, चक्र, कल्पवृक्ष, ध्वजा, पद्म, अंकुश तथा वज्र के चिह्नों द्वारा सुशोभित हैं। कब तुम उन्हें मेरे मस्तक पर अलंकृत करोगे?

विराजमानोज्ज्वलपीतवाससं
स्मितातसीसूमनसामलच्छविम्।
निमग्ननाभिं तनुमध्यमुन्नतं
विशालवक्षःस्थलशोभिलक्षणम् ।।३२।।

– तुम उज्ज्वल पीत वस्त्र से सुशोभित हो; प्रस्फुटित अतसी पुष्प के समान तुम्हारा निर्मल रूप है; तुम्हारी नाभि गहन है, मध्यस्थल क्षीण है, आकार उन्नत है और विशाल वक्ष सुलक्षणों से शोभित है।

चकासतं ज्याकिणकर्कशैः शुभैः
चतुर्भिराजानुविलम्बिभिर्भुजैः।
प्रियावतंसोत्पल-कर्ण-भूषण-
श्लथालकाबन्धविमर्दशंसिभिः ।।३३।।

– तुम्हारी चारों भुजाएँ प्रत्यंचा के आघात से कठोर, मंगलमय तथा आजानु सुशोभित होती हैं; उन्हें देखकर स्पष्ट बोध होता है कि तुमने उनके द्वारा अपनी प्रिया के मस्तक-पद्म, कुण्डल तथा बिखरे केशों का मर्दन किया है।

उदग्रपीनांसविलम्बिकुण्डला-
लकावलीबन्धुरकम्बुकन्धरम्।
मुखश्रिया न्यक्कृतपूर्णनिर्मला-
मृतांशुबिम्बाम्बुरुहोज्ज्वलश्रियम् ।।३४।।

– तुम्हारे उच्च व विशाल कन्धों तक पहुँचती केशराशि तथा कुण्डलों से तुम्हारी शंख के समान ग्रीवा सुशोभित हो रही है। तुम्हारे मुखमण्डल की शोभा से तुलना करने पर निर्मल पूर्ण चन्द्र तथा कमल की उज्ज्वल कान्ति भी तुच्छ हो जाती है।

प्रबुद्धमुग्धाम्बुजचारुलोचनं
सविभ्रमभ्रूलतमुज्ज्वलाधरम्।
शुचिस्मितं कोमलगण्डमुन्नसं
ललाटपर्यन्त-विलम्बितालकम् ।।३५।।

– तुम्हारे सुन्दर नेत्र प्रस्फुटित मनोहर पद्म के समान हैं, भौंहें लताओं के समान टेढ़ी हैं, होठ उज्ज्वल हैं, हास्य निर्मल है, कपोल कोमल हैं, नाक ऊँची है तथा अलकें ललाट तक झुकी हुई हैं।

❖ (क्रमशः) ❖

जीना सीखो (११)

स्वामी जगदात्मानन्द

(लेखक रामकृष्ण संघ के एक वरिष्ठ संन्यासी हैं । उन्होंने युवकों को जीवन-निर्माण में मार्गदर्शन करने हेतु कन्नड़ भाषा में एक पुस्तक लिखी, जो अतीव लोकप्रिय हुई । हाल ही में उसका अंग्रेजी अनुवाद भी प्रकाशित हुआ है । इसकी उपयोगिता को देखकर हम इसका धारावाहिक प्रकाशन कर रहे हैं । दिल्ली के डॉ. कृष्ण मुरारी ने इसका हिन्दी अनुवाद किया है । – सं.)

गहन मन का गुप्त कोष

पिछले १६० वर्षों के दौरान सम्मोहन-विद्या के द्वारा मन के गहन स्तरों में छिपे खजाने के विषय में खोज किया जा रहा है । तरह तरह के मतभेदों तथा विरोधों के बाद वैज्ञानिकों ने इसे स्वीकार कर लिया है । जे. बी. एस. हेल्डन नामक एक प्रमुख वैज्ञानिक का मत है, "जिसने सम्मोहन का एक भी प्रयोग देखा होगा, वह भविष्य के चमत्कार तथा मानव आस्था की विलक्षण सम्भावनाओं की कल्पना कर सकता है । औषधि-विज्ञान के क्षेत्र में अनुसन्धान से प्राप्त अनेकों उपचारों को आरम्भ में जादू समझा गया, परन्तु उनके द्वारा स्वास्थ्य-रक्षा के क्षेत्र में क्रान्ति आ गयी है । वैसे ही यदि मानव मन की नियन्त्रण-शक्ति के नियम जनसाधारण के स्तर पर स्वीकृत हो जायँ, तो विश्व का रूप ही बदल जाय ।"

एक हजार वर्ष पूर्व भी, विभिन्न देशों के केवल कुछ लोगों को ही सम्मोहन के द्वारा प्राप्त होनेवाले रहस्यों को ज्ञान था । बाद में इस क्षेत्र में वैज्ञानिक अनुसन्धान तथा प्रयोग किये गये । कुछ वर्ष पूर्व एक रिपोर्ट में बताया गया है कि अमेरिका के लगभग ४००० दन्त शल्य-चिकित्सकों को सम्मोहन का प्रशिक्षण दिया गया । अब भी काफी लोगो को इसका प्रशिक्षण मिल रहा है । १९५० तक ६००० चिकित्सकों ने सम्मोहन द्वारा रोगियों का उपचार किया । ये मनोवैज्ञानिकों तथा मनोरोग-चिकित्सको से अतिरिक्त थे । १९५८ मे अमेरिकी आयुर्विज्ञान परिषद ने सम्मोहन पर एक समिति बनाई, जिसका निष्कर्ष था कि अस्पतालो मे कुछ रोगों के उपचार मे सम्मोहन का प्रयोग हो सकता है । पर इस विशेष क्षमता के माध्यम से अज्ञानी, स्वार्थी तथा दुष्ट लोगो द्वारा रोगियो के शोषण करने का भय है और कुछ लोगों की यह आशंका शायद निराधार हो ।

रूस में इस क्षेत्र में विलक्षण प्रगति हुई है । ३० वर्ष पूर्व ही रूसी विशेषज्ञ प्रयोग तथा निरीक्षण का चरण पार करके सम्मोहन का उपयोग जान गये थे । रोगियों को अचेत करने मे उन्होने सम्मोहन का उपयोग किया । आधुनिक औषधियो के दायरे मे न आनेवाले अनेक रोगो पर वे सम्मोहन का प्रयोग करते थे । लोगो मे मद्यपान आदि की लत छुड़ाने में भी इसका प्रयोग किया गया । उन्होंने इस तकनीक का उपयोग करके मार्फिन आदि मादक औषधियों के आदत से होनेवाले परिणामों से लोगो को छुटकारा दिलाया और कई शारीरिक तथा मानसिक रोगो का उपचार करने मे सफल हुए । उन्होने ग्रन्थियो की सूजन, तीक्ष्ण वेदना तथा सदमे से पीड़ित रोगियों के मन की गहनताओं में सूक्ष्म केन्द्रों को उत्तेजित या दमित करके उनका इलाज किया तथा उन्हें हीनता की भावना से बचाया ।

इस सन्दर्भ में दो अन्य ऐसे वैज्ञानिकों के विचार स्मरणीय हैं, जिन्होंने मानव-मन के स्वरूप तथा शक्ति को समझने और इन्द्रियातीत अनुभूतियों पर शोध के महत्व पर बल दिया। सुप्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक सिग्मण्ड फ्रॉयड का कहना था, "यदि मुझे पुनः अपना जीवन आरम्भ करना हो, तो मैं उसे मनोविश्लेषण के स्थान पर इन्द्रियातीत बोध के अध्ययन में नियोजित करता ।" और निकोलाई टेस्ला ने कहा था, "यदि विज्ञान जगदातीत या इन्द्रियातीत अनुभूतियों पर खोज में लग जाय, तो विगत अनेक शताब्दियों में जो उन्नति हुई है, उसे केवल एक दशक में ही प्राप्त किया जा सकता है ।"

रूसी वैज्ञानिक डॉ. वेस्लिव के अनुसार, "इन्द्रियातीत बोध के पीछे निहित शक्ति की खोज, महत्व की दृष्टि से अणुशक्ति की खोज के समतुल्य है । समस्त वैज्ञानिक विचारों के एकाधिकार का दावा करनेवाले और अतीन्द्रिय-गवेषणा से थोड़ा भी परिचय न रखनेवाले इस देश के तथाकथित बुद्धिजीवी, स्वयं को यथार्थवाद का अनुरागी बताते हैं, उनके लिए इस तथ्य को पचा पाना कठिन होगा कि रूस इस क्षेत्र के अनुसन्धान में उत्तरोत्तर प्रगति कर रहा है । लगता है कि हमारे कुछ देशवासी, सत्य की खोज को नही, बल्कि जो कुछ वे नहीं समझ पाते, उसे अन्धविश्वास कहकर आक्रमण करना ही विज्ञान का उद्देश्य मानते है । परन्तु जैसा कि हम जानते है सत्य किसी के विश्वास पर आश्रित नही है ।"

दिव्य आलोक की महिमा

अत्यन्त प्राचीन काल से ही विश्व के विभिन्न भागों में लोग मानव शरीर के चारों ओर स्थित एक ऐसे प्रभा-मण्डल में विश्वास करते आए हैं, जो सामान्य लोगो के दृष्टिक्षेत्र में नहीं आता । सन्तों तथा आध्यात्मिक महापुरुषों के चित्रों में उनके सिर के चारों ओर हमें एक आभा दिखाई देती है । कभी कभी बच्चे या इन्द्रियातीत दृष्टिशक्ति से सम्पन्न लोग कहते है कि उन्हे प्रत्येक व्यक्ति को घेरे हुए विभिन्न रंगों की आभा दिखाई देती है । इस आभा के लक्षणो तथा सघनता का अध्ययन करके किसी के भी शारीरिक तथा मानसिक स्वास्थ के विषय मे जानकारी प्राप्त की जा सकती है । पहले यह क्षमता केवल कुछ ही लोगों मे हुआ करती थी । परन्तु आज रूसी विशेषज्ञ

किर्लियन यन्त्र की सहायता से इस आभा के रंगों को पहचान लेते हैं। वे उन रोगों के कारण का निदान कर लेते हैं, जिन्हें एक्स-रे से नहीं पहचाना जा सकता। किर्लियन यंत्र, बोले गये छोटे-से झूठ को भी को भी प्रकट कर देता है। यह मन की बदलती हुई अवस्थाओं तथा शारीरिक रोगों के मूल का भी पता लगाता है। वैज्ञानिकगण विभिन्न क्षेत्रों में शोध के लिए इस यन्त्र का उपयोग कर रहे हैं। रूसी वैज्ञानिक कीर्लियन पद्धति के द्वारा अनेक रोगों का निदान करने में सफल हुए हैं। ''केवल रूस में ही नहीं; रूमानिया, बुल्गेरिया, हंगरी, चेकोस्लोवाकिया तथा पूर्वी जर्मनी के लगभग एक हजार उच्च कोटि के वैज्ञानिक, भौतिकशास्त्री, जीवविज्ञानी और चिकित्सक, करीब ५० हजार प्रयोगशाला-सहायकों के साथ किर्लियन विधि से रोगों के निदान पर शोध में लगे हुए हैं।'' (The New Soviet Psychic Discoveries)

प्रत्येक व्यक्ति के शरीर की आभा के अलावा मानव-मन में अन्य अपूर्व शक्तियाँ भी छिपी हैं। इन शक्तियों को समझने के पूर्व हमें एक महत्वपूर्ण तथ्य जानना आवश्यक है, जो किर्लियन यन्त्र के द्वारा वैज्ञानिकों को ज्ञात हुई थी। मानव की आत्मा – मांस, हड्डियों, रक्त तथा स्नायुओं आदि से निर्मित इस भौतिक शरीर का अंग नहीं है। सूक्ष्म शरीर की द्योतक, यह आभा मानव या पशु के मृत शरीर में दिखाई नहीं देती। इसका तात्पर्य यह है कि यह सूक्ष्म-शरीर ही हमारे भौतिक शरीर की समस्त क्रियाओं के लिए उत्तरदायी है। प्राचीन भारत के ऋषियों ने इस ऊर्जा-शरीर को सूक्ष्म-शरीर नाम दिया था।

जैसा कि हम जानते हैं, अब तक किसी भी मनोवैज्ञानिक या वैज्ञानिक परम्परा ने मस्तिष्क से पृथक् मन के अस्तित्व को स्वीकार नहीं किया है। जिन वैज्ञानिकों ने मन तथा मस्तिष्क की एकता को सत्य माना है, वे अपने इस विश्वास में आड़े आनेवाली खोजों को स्वीकार नहीं करते। विज्ञान की यही परम्परा है। परन्तु सुप्रसिद्ध स्नायुशास्त्री तथा शल्यचिकित्सक डॉ. वाइल्डर पेनफील्ड ने वर्षों के अपने अनुभवों को व्यक्त करते हुए अपनी पुस्तक 'Secret of Mind' (मन का रहस्य) में लिखा है कि अब मस्तिष्क से पृथक् मन के अस्तित्व को स्वीकार करने का समय आ गया है। एक लेखाकार या योजनाकार कम्प्यूटर का प्रयोग करता है, सारे कार्य उसकी सहायता से करता है, परन्तु वह इस यंत्र का उपयोग किये बिना भी अपना कार्य सम्पन्न करने की क्षमता रखता है। इस प्रकार, सामान्य रूप से यद्यपि मन अपनी क्रियाओं में मस्तिष्क पर आश्रित है, परन्तु पेनफील्ड के मतानुसार यह स्वाधीन रूप से भी कार्य करने में सक्षम है।

प्रचण्ड आत्मा निद्रामग्न है

शोधों, प्रयोगों तथा उदाहरणों के अध्ययन से यह सिद्ध हो गया है कि मन की अतीन्द्रिय शक्तियों की धारणा महज एक कपोल कल्पना या अन्धविश्वास मात्र नहीं हैं। कुछ लोगों में ये देर से प्रकट होती है और जो इनके लिए प्रयास ही नहीं करते, उन्हें इनका अनुभव नहीं भी हो सकता है, पर उनके अस्तित्व के विषय में शंका की कोई गुंजाइश नहीं है। इन विभिन्न प्रकार शक्तियों के विषय में संक्षिप्त जानकारी इस प्रकार है –

१. टेलीपैथी : सुदूर स्थित मनुष्य के मन में विचार द्वारा सन्देश भेजकर उसके साथ सम्पर्क स्थापित करने की क्षमता।

२. देहातीत अनुभव : भौतिक देह के बाहर जाकर सैकड़ों मील दूर की घटनाओं को देखना या सुनना।

३. इन्द्रियातीत बोध : अतीन्द्रीय शक्ति के द्वारा शरीर के भीतर की ऐसी व्याधियों को जान लेना, जिसे एक्स-रे भी न जान सके। शरीर से नि:स्रित होनेवाली आभा के विभिन्न रंगों को देखना तथा उनकी व्याख्या कर पाना।

४. किसी व्यक्ति के न रहने पर भी उसके द्वारा व्यवहृत वस्तु के स्पर्श से उसके शारीरिक गठन तथा गुण बता देना।

५. अपने तथा अन्य लोगों के पिछले जन्मों को जानने की क्षमता। इस क्षेत्र के विशेषज्ञों का कहना है कि बचपन, शैशव, गर्भवास तथा यहाँ तक कि इस पृथ्वी पर जन्म लेने के पूर्व की भी स्मृतियों को पुन: जागृत करना सम्भव है। 'आयु लौटाने' की प्रक्रिया के द्वारा सम्मोहित किया गया व्यक्ति अपने भूले हुए अनुभवों का भी सविस्तार वर्णन करता है। दूसरा व्यक्ति भी उसके मन के साथ अपने मन को जोड़कर वे ही अनुभूतियाँ प्राप्त कर सकता है। इस क्षेत्र में चार विश्वविख्यात मनोवैज्ञानिकों के शोध बड़े उत्साहवर्धक तथा मानव मन के आन्तर्जगत् के द्वारोन्मोचक हैं। इनमें एलेक्जेण्डर कैनन तथा डेनिस केल्सी इंगलैण्ड के हैं; वारवरा इवानोव रूसी महिला हैं और हेलेन वाम्बैच एक अमेरीकी महिला मनोवैज्ञानिक हैं।

६. केवल विचारों की शक्ति से रोगों का इलाज करना।

७. मनोशक्ति से बाह्य जगत् की चीजें स्थानान्तरित करना।

८. शरीर के स्वचालित क्रियाओं पर नियंत्रण, यथा दिल की धड़कनों को रोकना, नाड़ी की गति को घटाना या बढ़ाना।

९. केवल मन की शक्ति से चित्र को कैमरे की लेन्स पर अंकित करना।

योगाभ्यास के द्वारा जो शक्तियाँ प्राप्त होती हैं, उनमें से कुछ इस प्रकार हैं –

योग में संयम मन की ऐसी अवस्था है, जिसमें यह गहन एकाग्रता की उपलब्धि करके वस्तु का बाह्य रूप छोड़कर उसके आन्तरिक भाव के साथ तादात्म्य की अनुभूति करता है और इस अवस्था का प्राप्ति उसे क्षण भर में ही हो जाती है। संयमित मन के द्वारा जिन शक्तियों की प्राप्ति होती है, उनका पातंजल योगशास्त्र के तीसरे अध्याय में वर्णन किया गया है। यहाँ पर उनके कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं –

(क) उस अवस्था में यदि कोई भूत या भविष्य को जानना चाहे, तो उसे संस्कारों को परिवर्तन पर मन:संयम करना होगा। कुछ संस्कार अभी सक्रिय हैं, कुछ कार्य कर चुके तथा कुछ सक्रिय होने की प्रतीक्षा में है। इन पर ध्यान करने से भूत भविष्य का ज्ञान होता है।

(ख) दूसरे के शरीर के लक्षणों पर संयम करने से योगी उसके मन का स्वरूप जान लेते हैं।

(ग) शरीर के आकार पर संयम करने से योगी अदृश्य हो जाते हैं।

(घ) अपने कर्मों पर संयम करने पर उन्हें अपने देहान्त का ठीक समय ज्ञात हो जाता है।

(ङ) मित्रता, दया आदि पर मन:संयम करने से योगी को इन गुणों में सर्वोष्कृष्ट सिद्धि मिलती है।

(च) ज्योति पर मन को संयमित करने से योगी दूर की वस्तुएँ, पर्वतों के उस पार स्थित चीजें तथा अत्यन्त सूक्ष्म वस्तुएँ देखता है।

(छ) सूर्य पर संयम करने से विश्व का ज्ञान प्राप्त होता है।

(ज) नाभि पर संयम से शरीर के आन्तरिक संरचना का ज्ञान होता है।

(झ) कण्ठ के नीचे संयम से भूख नहीं लगती।

(ञ) हृदय पर संयम करने से मनों का ज्ञान होता है।

(ट) आकाश तत्त्व तथा श्रवणेन्द्रिय के साथ उसके सम्बन्ध पर मन:संयम से योगी को असामान्य श्रवण-शक्ति मिल जाती है। तब वह मीलों दूर होनेवाली बातों या ध्वनियों को सुन सकता है।

(ठ) आकाश तथा शरीर के साथ उसके सम्बन्ध पर संयम करने से योगी हवा में उड़ सकता है, क्योंकि शरीर भी आकाश से बना है। योगी को हल्केपन की प्राप्ति हो जाती है और वह हवा से होकर कहीं भी जा सकता है।

यहाँ थोड़े से हीं उदाहरण दिए गये है। राजयोग में इस पर विस्तार से चर्चा हुई है। योगी की अन्य शक्तियाँ निम्नलिखित हैं – (१) अणिमा – सूक्ष्म हो जाना, (२) महिमा – बहुत बड़ा बनना, (३) लघिमा – वायु से भी हलका होना, (४) सभी की इन्द्रियों से कर्म करना, (५) यथेच्छा आनन्द लेना, (६) अपनी शक्ति को कर्म में लगाना, (७) स्वयं या दूसरों को नियंत्रित करना अर्थात् विषयसुख की इच्छा से मुक्त करना और (८) अपनी इच्छानुसार भोगों की प्राप्ति।

ये शक्तियाँ योगी को अनायास ही प्राप्त हो जाती हैं, परन्तु वह इनके कारण अपने आध्यात्मिक पथ से च्युत नहीं होता।

अगले पृष्टों में हम देखेंगे कि इन शक्तियों तथा आभा से पीछे परमात्मा की ही दिव्य ज्योति तथा दिव्य शक्ति है।

सूर्य को आलोक देनेवाली ज्योति !

दुनिया को प्रकाश कौन देता है? एक बालक भी इसका उत्तर दे सकता है। क्या सूर्य अपनी चमकीली किरणों से जग को प्रकाशित नहीं करता? न केवल प्रकाशित, अपितु वह इसका पोषण भी करता है। पर अगला प्रश्न सुनकर तुम चौंक पड़ोगे कि सूर्य की ज्योति कहाँ से आती है? इसका उत्तर कठिन है, पर गहराई से सोचने पर इसे समझा जा सकता है। उपनिषदों ने इसका उत्तर विभिन्न दृष्टिकोणों से दिया।

बृहादारण्यक उपनिषद् (४/३/२) में विदेह के सम्राट् राजा जनक तथा ऋषि याज्ञवल्क्य की परिचर्चा का वर्णन है –

जनक ने कहा, "महाराज, यह पुरुष कौन-से ज्योति वाला है?" यहाँ उस प्रकाश के विषय में पूछा गया, जिसकी सहायता से हम विभिन्न कर्म करते हैं। यह प्रश्न साधारण मानव की दृष्टि से पूछा गया। 'साधारण मानव' से तात्पर्य उस व्यक्ति से है, जो स्वभाव से ही अपने भौतिक शरीर तथा उसके अवयवों के साथ अपना तादात्म्य बनाये रहते हैं। ऋषि याज्ञवल्क्य इस प्रश्न पर चर्चा करते हुए बड़े रोचक ढंग से अपनी व्याख्या को बाह्य जगत् से आरम्भ करके क्रमश: अन्तर्जगत् की ओर ले जाते हैं और अन्तत: उसी में समाधान दिखाते हैं। याज्ञवल्क्य कहते हैं कि सूर्य, चन्द्र तथा अग्नि के प्रकाश की सहायता से मनुष्य अपने कर्म करते हैं। जनक ने फिर पूछा, "सूर्य तथा चन्द्रमा के अस्त हो जाने पर और अग्नि के भी शान्त हो जाने पर मनुष्य को कहाँ से प्रकाश मिलता है।" याज्ञवल्क्य ने उत्तर दिया, "वाणी (शब्द) से"।

तुम सोचोगे कि "मानव के लिए शब्द भला कैसे प्रकाश हो सकता है?" मान लो वर्षा के दिन शाम को तुम बाजार गए। तभी भीषण आँधी-तूफान के कारण बिजली चली जाय। सर्वत्र अँधेरा हो जाए। हाथ-को-हाथ दिखाई न देता हो। तुम खड़े होकर सोच रहे हो – क्या करें। तब अपने कुत्ते के भौंकने की आवाज को सुनकर उसी दिशा में चलते हुए तुम अपने घर पहुँच जाते हो। यहाँ ध्वनि ने ही प्रकाश का कार्य किया। इसी प्रकार अँधेरे में फूलों की सुगन्ध भी प्रकाश का कार्य कर सकती है।

अब प्रश्न उठता है कि जब हम जाग्रत अवस्था में नहीं होते, तब प्रकाश कहाँ से आता है? जाग्रत अवस्था में तो सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि आदि प्रकाश देते हैं; परन्तु स्वप्न तथा सुषुप्ति में प्रकाश कहाँ से आता है?

अनेक वैज्ञानिकों तथा गणितज्ञों को स्वप्न में अपनी समस्याओं का हल मिला है। विश्व के महानतम गणितज्ञों में से एक श्रीनिवास रामानुजन् एक ऐसी ही विभूति थे। केकुले नामक वैज्ञानिक ने स्वप्न में ही बेनजीन की संरचना देखी था। स्वप्न में हम मित्रों से मिलते हैं, बात करते हैं और विभिन्न स्थानों पर

जाते है। यह सब हम किस प्रकाश की सहायता से देखते हैं? गहरी निद्रा से जागने पर हमें कुछ ज्ञात नहीं रहता, हम केवल यही सोचते हैं कि खूब सोये। अत: गहरी निद्रा में भी कोई प्रकाश कार्य करता है। स्वप्न तथा निद्रा के दौरान बाह्य प्रकाश सहायक नहीं होता और उसमें गणित के प्रश्न तथा वैज्ञानिक तथ्यों की खोज हो जाती है। तो क्या इन सूक्ष्म मानसिक क्रियाओं के पीछे कोई प्रकाश या चेतना नहीं होती?

अद्भुत किन्तु सत्य

फादर अल्फान्सो द' लगौरी २१ सितम्बर १७७४ को एरिजो जेल के बन्दियों की प्रात:कालीन प्रार्थना-सभा में जाने के लिए तैयार हो रहे थे। तभी वे सहसा अचेत हो गए। उस अवस्था में वे दो घण्टे रहे। चेतना लौटने पर उन्होंने बताया कि वे रोम गये थे और वहाँ उन्होंने चौदहवें क्लीमेण्ट की मृत्यु देखी तथा उनके अन्तिम संस्कार में भी भाग लिया। युक्तिवादियों ने इसे मात्र एक स्वप्न माना। दो दिन बाद जब उन्हें पोप की मृत्यु का समाचार सुना, तो उन लोगों ने इसे एक संयोग कहकर टाल दिया। पर जब रोम से आये लोगों ने बताया कि अन्तिम संस्कार में फादर अल्फान्सो उपस्थित थे और उन्होंने अन्त्येष्टि का नेतृत्व भी किया, तब वे लोग दंग रह गये।

वह कौन-सी ज्योति या चेतना थी, जिसने फादर के सूक्ष्म शरीर के विभिन्न कार्यों को देखा, जो स्थान-काल की सीमाओं को पार करके मरणासन्न पोप के पास पहुँच गई तथा उनके अन्तिम कृत्य में भाग लेकर फिर स्थूल शरीर में लौट आयी?

क्या यह चेतना की अमर ज्योति नहीं है?

सम्मोहन के प्रभाव से लोगों ने पिछले जन्मों की घटनाएँ बताकर तथा अपने वर्तमान जन्म में अज्ञात विचित्र भाषाएँ बोलकर मनोवैज्ञानिकों को आश्चर्य में डाल दिया।

मन के गहन स्तरों में संचित असंख्य जन्मों के अनुभवों को कौन-सा प्रकाश आलोकित करता है? दूसरे शब्दों में, व्यक्ति को बोध करानेवाली इन्द्रियों के पीछे कौन-सा चेतन तथा शाश्वत तत्त्व स्थित है?

कहते हैं कि भगवान गौतम बुद्ध अपने पिछले पाँच सौ जन्मों की घटनाएँ याद कर सकते थे। वह कौन-सी अपरिवर्तनशील शाश्वत ज्योति है, जो विभिन्न स्थानों तथा कालों में विभिन्न शरीरों तथा इन्द्रियों द्वारा अर्जित असंख्य सूक्ष्म अनुभूतियों को आलोकित करती है?

क्या यह चेतना की शाश्वत ज्योति नहीं है?

हाँ, यही चेतना का वह स्वप्रकाश स्वतन्त्र मूलतत्त्व है, जो शरीरों या वस्तुओं के स्थूल या सूक्ष्म तत्त्वों के परे तथा उनसे अमिश्र रहता है। स्वयं किसी अन्य के द्वारा प्रकाशित हुए बिना ही, यह सभी वस्तुओं को प्रकाशित करता है। यह अमर है तथा समस्त ज्ञान, आनन्द तथा शक्तियों का मूल स्रोत है।

अब हम पुन: जनक के प्रश्न पर आते हैं, "हे याज्ञवल्क्य, सूर्य तथा चन्द्रमा के अस्त हो जाने पर, अग्नि के बुझ जाने पर और वाणी के भी शान्त हो जाने पर यह पुरुष किसके प्रकाश में कार्य करता है?" याज्ञवल्क्य ने उत्तर दिया, "आत्मा ही उसकी ज्योति है, क्योंकि वह आत्मा की ज्योति से बैठता है, सब ओर जाता है, कर्म करता है तथा कर्म करके नियत स्थान पर लौट आता है।"

अत: यह सत्य का, सच्चिदानन्द का प्रकाश है। दूसरे शब्दों में, यह शुद्ध चैतन्य, स्वर्णिम स्वप्रकाश तत्त्व (आत्मा) का प्रकाश है, जो मनुष्य की जाग्रत, स्वप्न तथा सुषुप्ति अवस्थाओं में उससे सभी कर्म कराता है, उस समय चाहे वह अपने को शरीर के बाहर अनुभव करे या विभिन्न शरीरों के भीतर। शरीर तथा उसके अवयवों से पृथक् रहनेवाले आत्मा का प्रकाश सभी वस्तुओं को प्रकाशित करता है। आत्मा स्वयंप्रकाश है। उसी की प्रभा से हम सूर्य तथा अन्य वस्तुएँ देखते हैं। अत: सूर्य की जो ज्योति विश्व-ब्रह्माण्ड को आलोकित करती है, वह आत्मा की ही ज्योति है। कठोपनिषद् (२/२/१५) में यह भाव बड़े सुन्दर ढंग से व्यक्त किया गया है – "**तस्य भासा सर्वमिदं विभाति** – उसके प्रकाशित होने से ही सब कुछ प्रकाशित होता है; उसी के प्रकाश से यह सब भासित होता है।"

जाति, मत, वर्ण, पंथ आदि से निरपेक्ष रहकर, यह दिव्य ज्योति बली-निर्बल, धनी-निर्धन – सबके हृदय को आलोकित करती है। आत्मा की यही विलक्षण शाश्वत तथा महिमामय ज्योति हर व्यक्ति का मूल तत्त्व है। यह अमर, शुद्ध, चैतन्य, सर्वव्यापी तथा सबमें विराजमान तत्त्व, स्थान-काल तथा कारण के परे है और ऋषि तथा राजा, सन्त तथा पापी, कुरूप तथा सुन्दर और चर तथा अचर – सबको आलोकित करता है।

❖ (क्रमश:) ❖
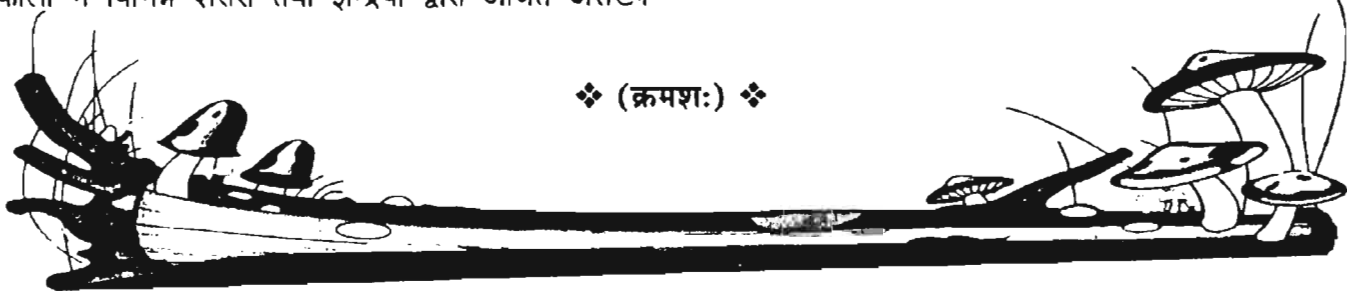
केनोपनिषद् (११)

स्वामी विदेहात्मानन्द

(सनातन वैदिक धर्म के ज्ञानकाण्ड को उपनिषद् कहते हैं। सहस्रों वर्ष पूर्व भारत में जीव-जगत् तथा अन्य गम्भीर विषयों पर प्रश्न उठाकर उनकी जो मीमांसा की गयी थी, इनमें उन्हीं का संकलन है। श्री शंकराचार्य ने वैदिक धर्म की पुनः स्थापना हेतु इन पर सरस भाष्य लिखकर अपने सिद्धान्त प्रतिपादित किये थे। उनमें से ईशोपनिषद् के बाद अब हम केनोपनिषद् पर शांकर भाष्य का सरल हिन्दी अनुवाद क्रमशः प्रस्तुत कर रहे हैं। यहाँ पर भाष्य की अधिकांश कठिन सन्धियों को खोलकर सरल रूप देने का प्रयास किया है और उसमें आये मूल श्लोक के शब्दों को रेखांकित कर दिया है, ताकि नव-शिक्षार्थियों को समझने में सुविधा हो सके। – सं.)

ब्रह्म की अन्तरात्मा-विषयक उपमा

अथाध्यात्मं यदेतद्गच्छतीव च मनोऽनेन चेतदुपस्मरत्यभीक्ष्णं संकल्पः ॥५॥ (३०)

अन्वयार्थ – **अथ** अब, इसके बाद (ब्रह्म का) **अध्यात्मम्** अन्तरात्मा-विषयक (उपदेश दिया जा रहा है)। **मनः** मन **यत्** जो **इव** मानो **एतत्** इस (ब्रह्म में) **गच्छति** जाता है **च** और (साधक) **अनेन** इस (मन) के द्वारा (ही) **एतत्** इस (ब्रह्म) के **अभीक्ष्णम्** अत्यन्त **उपस्मरति** निकट होकर (उनका) स्मरण करता है **च** और **संकल्पः** कल्पना करता है।

भावार्थ – इसके बाद अब ब्रह्म का अध्यात्म-विषयक उपदेश दिया जाता है – मन जो ब्रह्म में जाता हुआ प्रतीत होता है (अर्थात् साधक मानो) मन के द्वारा उनका अत्यन्त घनिष्ठ रूप से स्मरण करता है और मन के द्वारा जो ब्रह्म-विषयक धारणा होती है (यह ब्रह्म का अध्यात्म-विषयक उपदेश हुआ)।

भाष्य - अथ अनन्तरम् अध्यात्मं प्रत्यगात्म-विषय आदेश उच्यते। यद् एतद् गच्छति इव च मनः। एतद् ब्रह्म ढौकत-इव विषयीकरोति इव। यत् च अनेन मनसा एतद् ब्रह्म उपस्मरति समीपतः स्मरति साधकः अभीक्ष्णं भृशम्। संकल्पः च मनसो ब्रह्मविषयः। मन-उपाधिकत्वाद् हि मनसः संकल्प-स्मृति-आदि-प्रत्ययैः अभिव्यज्यते ब्रह्म, विषयी-क्रियमाणम् इव। अतः स एष ब्रह्मणो अध्यात्मम् आदेशः।

इसके बाद अब (ब्रह्म का) अध्यात्मम् अर्थात् अन्तरात्मा-विषयक उपदेश बताया जाता है। यह जो मन इस ब्रह्म को मानो घेरते हुए अपना विषय बना लेता है। साधक जो इस मन के द्वारा इस ब्रह्म को निकट जानकर बारम्बार स्मरण करता है। मन का ब्रह्मविषयक यह चिन्तन भी अध्यात्म-विषयक उपमा है। मनरूप उपाधि होने से ही ब्रह्म मन की कल्पना, स्मृति आदि वृत्तियों द्वारा मानो विषयीकृत होता हुआ अभिव्यक्त होता है। अतः वही यह ब्रह्म की अध्यात्म (अन्तरात्मा) विषयक उपमा हुई।

विद्युत् निमेषणवद् अधिदैवतं द्रुत-प्रकाशन-धर्मि, अध्यात्मं च मनःप्रत्यय-समकाल-अभिव्यक्तिधर्मि – इति एष आदेशः। एवम् आदिश्यमानं हि ब्रह्म मन्दबुद्धि-गम्यं भवति इति ब्रह्मणः आदेश-उपदेशः। न हि निरुपाधिकम् एव ब्रह्म मन्दबुद्धिभिः आकलयितुं शक्यम् ॥५॥

पिछले मन्त्र में क्षण मात्र के लिए प्रकाश देनेवाले विद्युत 'चमकने' के समान और पलकों के झपकने के समान – यह तो (ब्रह्म की) अधिदैवत (देवता-विषयक) उपमा हुई और मन की वृत्ति के साथ साथ अभिव्यक्ति – यह अध्यात्म (अन्तरात्मा) विषयक उपमा हुई। इस प्रकार उपमित दिया जानेवाला ब्रह्म ही मन्दबुद्धि के लिए बोधगम्य होता है – इस प्रकार ब्रह्म का उपमारूप उपदेश हुआ। ब्रह्म यदि (पूर्णतः) निरुपाधिक होगा, तो मन्दबुद्धि के लिए उसकी धारणा सम्भव नहीं होगी ॥५॥

वनसंज्ञक ब्रह्म की उपासना का फल

तद्ध तद्वनं नाम तद्वनमित्युपासितव्यं स य एतदेवं वेदाऽभि हैनं सर्वाणि भूतानि संवाञ्छन्ति ॥६॥ (३१)

अन्वयार्थ – **तत्** वह ब्रह्म **ह** निश्चय ही **तद्वनम्** तद्वनम् (सभी का वन्दनीय) **नाम** नामवाला है; (अतः) वह **तद्वनम्** तद्वनम् के नाम से **इति उपासितव्यम्** उपासना करने योग्य है। **सः यः** जो कोई **एतत्** इस ब्रह्म को **एवम्** इस प्रकार **वेद** उपासना करता है **एनम्** उसको **ह** निश्चय ही **सर्वाणि** सभी **भूतानि** प्राणी **अभिसंवाञ्छन्ति** प्रार्थना किया करते हैं ॥

भावार्थ – वह ब्रह्म निश्चय ही तद्वनम् (सर्व प्राणियों द्वारा वन्दनीय) नामवाला है; अतएव वह तद्वनम् के नाम से उपासना करने योग्य है। जो कोई इस ब्रह्म की इस प्रकार उपासना करता है, उसको निश्चय ही समस्त प्राणीगण प्रार्थना किया करते हैं ॥

भाष्य - किंच - तद् ब्रह्म ह किल तद्वनं नाम तस्य तद्वनं तस्य प्राणि-जातस्य प्रत्यगात्म-भूतत्वाद् वनं वननीयं संभजनीयम्। अतः तद्वनं नाम प्रख्यातं ब्रह्म तद्वनम् इति यतः, तस्मात् तद्वनम् इति अनेन एव गुणाभिधानेन उपासितव्यं चिन्तनीयम्।

और – उस ब्रह्म का 'तद्वनम्' नाम प्रसिद्ध है, उसके प्राणियों के अन्तरात्मा-स्वरूप होने के कारण वह वन्दनीय अर्थात् भजनीय है; अतः उनका 'तद्वनम्' नाम है। चूँकि ब्रह्म तद्वनम् नाम से विख्यात् है, अतः वह इस गुण रूपी नाम के द्वारा उपासना या चिन्तन करने योग्य है।

अनेन नाम्ना-उपासनस्य फलम् आह स यः कश्चित् एतद् यथोक्तं ब्रह्म एवं यथोक्त-गुणं वेद उपास्ते अभि ह एनम् उपासकं सर्वाणि भूतानि अभि-संवाञ्छन्ति ह प्रार्थयन्त एव यथा ब्रह्म ।।६।।

इस 'तद्वनम्' नाम से उपासना का फल बताते हैं, जो कोई व्यक्ति इस कहे हुए ब्रह्म की इस प्रकार जानता या उपासना करता है; ऐसे उपासक से सारे प्राणी अपने इच्छित फल के लिए प्रार्थना करते हैं, वैसे ही जैसे ब्रह्म से करते हैं ।।६।।

उपसंहार

एवम् अनुशिष्टः शिष्य आचार्यम् उवाच –

इस प्रकार उपदेश पाकर शिष्य ने आचार्य से कहा –

उपनिषदं भो ब्रूहित्युक्ता त उपनिषद् ब्राह्मीं वाव त उपनिषदमब्रूमेति ।।७।। (३२)

अन्वयार्थ – (शिष्य ने कहा) **भोः** हे भगवन्! (मुझे) **उपनिषदम्** ब्रह्मविद्या **ब्रूहि** बताइए **इति**। (इस पर आचार्य बोले) **ते** तुम्हें **उपनिषत्** ब्रह्मविद्या **उक्ता** बतायी जा चुकी है; (मैंने) **ते** तुम्हें **ब्राह्मीम्** ब्रह्म-विषयक **उपनिषदम्** गूढ़विद्या **वाव** ही **अब्रूमः** बतायी है **इति** ।।

भावार्थ – "हे भगवन्! मुझे ब्रह्मविद्या बताइए" – शिष्य द्वारा ऐसा कहने पर आचार्य बोले, "तुम्हें उपनिषद् बतायी जा चुकी है; मैंने तुम्हें ब्रह्म-सम्बन्धी रहस्यविद्या ही बतायी है।"

भाष्य – उपनिषदं रहस्यं यत् चिन्त्यं भो भगवन् ब्रूहि इति । एवम् उक्तवति शिष्ये आचार्यः – उक्ता अभिहिता ते तव उपनिषत् । का पुनः सा इति आह – ब्राह्मीं ब्रह्मणः परमात्मन इयं ब्राह्मी ताम्, परमात्म-विषयत्वाद् अतीत-विज्ञानस्य, वाव एव ते उपनिषदम् अब्रूम् इति उक्ताम् एव परमात्म-विद्याम् उपनिषदम् अब्रूम् इति अवधारयति उत्तरार्थम् ।

"हे भगवन् ! मुझे उपनिषद् नामक विचारणीय रहस्यविद्या बताइए" – शिष्य द्वारा ऐसा कहने पर आचार्य बोले – "तुम्हारे लिए उपनिषद् कही जा चुकी है।" वह उपनिषद् कैसी है? – इस विषय में पुनः कहते हैं – "पहले जो तुम्हारे लिए ज्ञानोपदेश किया गया, वह ब्रह्म या परमात्मा-सम्बन्धी उपनिषद् ही था।" पहले कही हुई विद्या के बाद अब आगे कहे जानेवाले (तप आदि) विषय का स्पष्ट निर्धारण करने के लिए ऐसा कहा गया।

परमात्म-विषयाम् उपनिषदं श्रुतवतः उपनिषदं भो ब्रूहि इति पृच्छतः शिष्यस्य को अभिप्रायः? यदि तावत् श्रुतस्य अर्थस्य प्रश्नः कृतः ततः पिष्टपेषणवत् पुनरुक्तो अनर्थकः प्रश्नः स्यात् । अथ सावशेष-उक्त-उपनिषत् स्यात्, ततः तस्याः फलवचनेन उपसंहारो न युक्तः 'प्रेत्य अस्मात् लोकाद् अमृता भवन्ति' (के. उ. २/५) इति । तस्माद् उक्त-उपनिषत्-शेषविषयो अपि प्रश्नो अनुपपन्न एव, अनवशेषितत्वात् । कः तर्हि अभिप्रायः प्रष्टुः इति ।

शंका – परमात्मा-विषयक उपनिषद् को सुननेवाले शिष्य के "हे भगवन्, उपनिषद् बताइए" – इस प्रश्न का क्या अभिप्राय है? यदि उसने सुने हुए विषय को ही फिर पूछा है, तब तो यह पिसी हुई चीज को पीसने के समान पुनरुक्ति रूप निरर्थक प्रश्न होगा। यदि उपनिषद् को अवशेषसहित (थोड़ा बाकी रखकर) कहा होता, तब तो (दूसरे अध्याय में ही) "इस संसार से छूटकर मुक्त हो जाते हैं" – इस प्रकार फल बताकर उसका उपसंहार कर देना उचित नहीं था। अतः ऐसा सोचना भी उचित नहीं कि वह कहे हुए उपनिषद् (ब्रह्मविद्या) के बचे हुए अंश को पूछ रहा हो, क्योंकि आचार्य ने कुछ बाकी नहीं छोड़ा है। तो फिर पूछनेवाले का अभिप्राय क्या है?

उच्यते – किं पूर्वोक्त-उपनिषत्-शेषतया तत्-सहकारि-साधन-अन्तर-अपेक्षा, अथ निरपेक्ष एव? सापेक्षा चेद् अपेक्षित-विषयाम् उपनिषदं ब्रूहि । अथ निरपेक्षा चेद् अवधारय पिप्पलादवत् 'न अतः परम् अस्ति' इति एवम् अभिप्रायः । एतद् उपपन्नम् आचार्यस्य अवधारण-वचनम् 'उक्ता त उपनिषत्' इति ।

समाधान – बताते हैं – (शिष्य का) अभिप्राय यह है कि क्या पहले कही गयी ब्रह्मविद्या के अवशिष्ट अंश के रूप में उसके सहकारी अन्य साधनों की अपेक्षा है या उनसे निरपेक्ष (स्वतन्त्र) रूप में? यदि (अन्य साधनों की) अपेक्षा है, तो अपेक्षित विषयों का रहस्य बताइये और यदि अपेक्षा न हो, तो पिप्पलाद के समान (प्रश्नो. ६/७) स्पष्टतः बताइए कि 'इसके बाद कुछ भी नहीं है'। अतः 'तुम्हारे लिए उपनिषद् कहा जा चुका है' – आचार्य का यह निर्धारण वाक्य उचित ही है।

ननु, न अवधारणम् इदम्, यतो अन्यद् वक्तव्यम् इति आह 'तस्य तपो दमः' इत्यादि ।

शंका – ऐसा है कि इसे निर्धारण-वाक्य नहीं कहा जा सकता, क्योंकि उन्हें 'तप, दम आदि उसके पाँव हैं' आदि कुछ और भी कहना है।

सत्यम्, वक्तव्यम् उच्यते आचार्येण न तु उक्त-उपनिषत् शेषतया तत्सहकारि साधन-अन्तर-अभिप्रायेण वा; किं तु ब्रह्मविद्या-प्राप्ति-उपाय-अभिप्रायेण वेदैः तत् अङ्गैः च

सहपाठेन समीकरणात् तपः प्रभृतिनाम् । न हि वेदानां शिक्षादि अङ्गानां च साक्षाद्-ब्रह्मविद्या-शेषत्वं तत्सहकारि-साधनत्वं वा सम्भवति ।

समाधान – यह ठीक है कि आचार्य को कुछ कहना है, परन्तु न तो वह पहले कही गयी उपनिषद् (ब्रह्मविद्या) के अवशिष्ट के रूप में है और न ही उसके सहकारी साधन के रूप में, बल्कि उसकी प्राप्ति के उपाय रूप में कही जायेगी, क्योंकि (अगले मन्त्र में) उनको वेद, वेदाङ्गों (शिक्षा, कल्प आदि) के साथ सहपाठ्य होने से तप (एकाग्रता) आदि की उसके साथ बराबरी बतायी जायेगी । वेद के शिक्षा आदि (और वैसे ही तप आदि) अंगों में से कोई भी साक्षात् ब्रह्मविद्या का बचा हुआ साधन या उसका सहकारी साधन नहीं हो सकता ।

सहपठितानाम् अपि यथायोगं विभज्य विनियोगः स्याद् इति चेत्; यथा सूक्त-वाक्-अनुमन्त्रण-मन्त्राणां यथादैवतं विभागः, तथा तपो-दम-कर्म-सत्य-आदीनाम् अपि ब्रह्मविद्या-शेषत्वं तत्सहकारि-साधनत्वं वा इति कल्प्यते । वेदानां तद् अङ्गानां च अर्थ-प्रकाशकत्वेन कर्म-आत्मज्ञान-उपायत्वम् इति एवं हि अयं विभागो युज्यते अर्थ-सम्बन्ध-उपपत्ति-सामर्थ्याद् इति चेत् ।

शंका – एक ही जगह पढ़े हुए विषय को भी, यदि जहाँ जैसा जुड़े, तदनुसार विभाजन करके प्रयोग करें तो! जैसे वेदमंत्रों में सूक्त, अनुवाक् (स्तोत्र), आवाहन मंत्र आदि को देवताओं के अनुसार विभाजित कर देते हैं, वैसे ही हम तप, दम, कर्म, सत्य आदि का भी जहाँ कहीं उपयोग हो, उसे ब्रह्मविद्या का अंग या सहकारी मानकर जोड़ लें तो! वस्तु को प्रकाशन करनेवाला है – इस रूप में हम वेद तथा उसके अंगों को कर्म तथा आत्मज्ञान के उपाय मान सकते हैं । इस प्रकार विषय-वस्तु के साथ सम्बन्ध तथा युक्ति की सामर्थ्य होने से यह विभाजन ठीक ही लगता है – यदि हम ऐसा कहें तो?

न; अयुक्तेः । न हि अयं विभागो घटनां प्राञ्चति । न हि सर्व-क्रिया-कारक-फल-भेदबुद्धि-तिरस्कारिण्या ब्रह्मविद्या-याः शेष-अपेक्षा सहकारि-साधनसम्बन्धो वा युज्यते । सर्व-विषय-व्यावृत्त-प्रत्यगात्म-विषयनिष्ठत्वात् च ब्रह्म-विद्यायाः तत्फलस्य च निःश्रेयसस्य । 'मोक्षम् इच्छन् सदा कर्म त्यजेद् एव ससाधनम् । त्यजतैव हि तज्ज्ञेयं त्यक्तुः प्रत्यक् परं पदम्' तस्मात् कर्मणां सहकारित्वं कर्मशेष-अपेक्षा वा न ज्ञानस्य उपपद्यते । ततो असद् एव सूक्त-वाक्-अनुमन्त्रणवद् यथा-योगं विभाग इति । तस्माद् अवधारणार्थता एव प्रश्न-प्रतिवचनस्य उपपद्यते । एतावति एव इयम् उपनिषद् उक्तानि अनिरपेक्षा अमृतत्वाय ।।७।।

समाधान – नहीं होगा, क्योंकि यह अयुक्तिसंगत है । इस प्रकार का विभाजन नहीं बनेगा, क्योंकि सर्व क्रिया, कारक, फल आदि की भेदबुद्धि का तिरस्कार करनेवाली ब्रह्मविद्या को (तीर्थाटन, पूजा, दान आदि) किसी अंग या सहकारी साधन की अपेक्षा हो ऐसा युक्तिसंगत नहीं लगता । और इस कारण भी कि ब्रह्मविद्या और इसके फलरूप मुक्ति ऐसी अन्तरात्मा से जुड़ी हैं, जो सर्व विषयों से निवृत्त (पृथक्) है । "मोक्ष की इच्छा करता हुआ व्यक्ति सदा-सर्वदा के लिए साधनसहित कर्म को छोड़ दे; क्योंकि त्याग के द्वारा ही त्यागकर्ता अपनी अन्तरात्मा में स्थित परमात्मा को जान सकता है ।" अतः ब्रह्मज्ञान को कर्मों का सहकारी या अंग होना अयौक्तिक है और सूक्त, अनुवाक् आदि के अनुमंत्रण (जोड़ने) के समान (तप आदि का) विभाजन उचित नहीं है । अतः यह निर्धारण कराना ही इस प्रश्नोत्तर का तात्पर्य ठीक प्रतीत होता है कि यहीं तक कही गयी उपनिषद् है और मोक्ष के लिए उसके साथ किसी अन्य साधन की आवश्यकता नहीं है ।।७।। ❖ (क्रमशः) ❖

विज्ञान और धर्म

मनुष्य का उद्देश्य 'प्रकृति' नहीं है – वरन् कुछ उससे ऊपर की वस्तु है । मनुष्य तभी तक मनुष्य कहा जा सकता है, जब तक वह प्रकृति से ऊपर उठने के लिए संघर्ष करता है । और यह प्रकृति बाह्य एवं आन्तरिक दोनों है । इस प्रकृति के भीतर केवल वे ही नियम नहीं हैं, जिनसे हमारे शरीर के तथा उसके बाहर के परमाणु नियंत्रित होते हैं, बल्कि ऐसे सूक्ष्म नियम भी हैं, जो वस्तुतः बाह्य प्रकृति को संचालित करनेवाली अन्तःस्थ प्रकृति का नियमन करते हैं । बाह्य प्रकृति को जीत लेना कितना अच्छा है, कितना भव्य है; परन्तु उससे असंख्य गुना अच्छा और भव्य है अन्तर प्रकृति पर विजय पाना । ग्रहों और नक्षत्रों का नियंत्रण करनेवाले नियमों को जान लेना बहुत अच्छा और गरिमामय है; परन्तु उससे अनन्त गुना अच्छा और भव्य है उन नियमों को जानना, जिनसे मनुष्य के मनोवेग, भावनाएँ और इच्छाएँ नियंत्रित होती हैं । इस आन्तरिक मनुष्य पर विजय पाना, मानव मन की जटिल व सूक्ष्म क्रियाओं के रहस्य को समझना पूर्णतया धर्म के अन्तर्गत आता है ।

– स्वामी विवेकानन्द

ईसप की नीति-कथाएँ (११)

(ईसा के ६२० वर्ष पूर्व आविर्भूत ईसप के जीवन के विषय मे ज्यादा जानकारी नही मिलती । कहते हैं कि वे पूर्व के किसी देश में जन्मे और यूनान में निवास करनेवाले एक गुलाम थे । उनके नाम पर प्रचलित अनेक कथाओं पर बौद्ध जातकों तथा पंचतंत्र आदि में ग्रथित भारतीय कथाओ की स्पष्ट छाप दिखाई देती है । सुकरात तथा सिकन्दर के युग में भी अनेक भारतवासी उन देशों की यात्रा किया करते थे, इस कारण प्राचीन यूनान की कथाओं पर भारतीय प्रभाव होना कोई असम्भव बात नहीं है । इन कथाओं में व्यवहारिक जीवन के अनेक कटु या मधुर सत्यों का निदर्शन मिलता है, अत: ये आबाल-वृद्ध सभी के लिये रोचक तथा उपयोगी हैं । इनकी लोकप्रियता का यही रहस्य है । – सं.)

चमगादड़ और नेवला

एक बार एक चमगादड़ जमीन पर गिर पड़ा और उसे एक नेवले ने पकड़ लिया । उसने नेवले से प्राणों की भिक्षा माँगी, परन्तु नेवले ने यह कहकर अस्वीकार कर दिया कि चिड़ियों से उसकी पुश्तैनी दुश्मनी है । चमगादड़ ने अपने दाँत दिखाते हुए उसे विश्वास दिलाया कि वह पक्षी नहीं, बल्कि एक प्रकार का चूहा है और इस प्रकार नेवले के चंगुल से छूट गया ।

कुछ दिनों बाद वह फिर चमीन पर गिरकर एक दूसरे नेवले के चंगुल में जा पड़ा । इससे भी चमगादड़ ने उसी प्रकार की प्रार्थना की । नेवले ने बताया कि चूहों से उसकी विशेष शत्रुता है । चमगादड़ ने उसे विश्वास दिलाया कि वह चूहा नहीं, बल्कि एक तरह का पक्षी है । इस प्रकार वह दूसरी बार भी बच निकला ।

बुद्धिमान लोग अपनी परिस्थितियों के अनुसार को स्वयं ढाल लेते हैं । जैसी चले बयार, पीठ तैसी करि लीजै ।

गधा और टिड्डा

एक गधा कुछ टिड्डों का गाना सुनकर मुग्ध हुआ । उसने सोचा कि जरूर उनके भोजन में ही कुछ ऐसा गुण होगा, जिससे उनकी आवाज ऐसी सुरीली हो गयी है । उसने टिड्डों से पूछा कि वे क्या खाते हैं । टिड्डों ने बताया कि वे केवल ओसों के कण चाटकर ही जीवन-यापन करते हैं । गधे ने भी अब से केवल ओसकण चाटकर ही पेट भरने का संकल्प किया । कुछ दिनों बाद ही उसकी भूख से मौत हो गयी ।

दूसरों के गुणों की उपलब्धि के लिए प्रतिभा तथा कठोर परिश्रम की आवश्यकता होती है; केवल उनके आहार-विहार की नकल करना ही यथेष्ट नहीं होता ।

कोयला बनानेवाला और धोबी

एक कोयला बनानेवाला अपने घर से ही अपना व्यवसाय चला रहा था । एक दिन वह अपने धोबी मित्र से मिला और उससे अनुरोध किया कि वह आकर उसी के पास रहे, क्योंकि एक साथ रहने से दोनों आनन्द में रहेंगे और घर का खर्च भी कम होगा । धोबी बोला, "यह व्यवस्था तो बिल्कुल ही असम्भव है, क्योंकि मैं जो कुछ धोकर सफेद करूँगा, तुम उसे तत्काल अपने धुएँ से काला कर डालोगे ।

मित्रता समान भाव के ही लोगों में होती है ।

टिड्डे पकड़नेवाला बालक

एक बालक टिड्डे पकड़ रहा था । बहुत-से टिड्डे पकड़ने के बाद उसने एक बिच्छू को देखा । टिड्डा समझकर उसने उसे भी पकड़ने को हाथ बढ़ाया । बिच्छू उसे अपना डंक दिखाते हुए बोला, "मित्र, यदि तुमने मुझे छूआ, तो तुम केवल मुझे ही नहीं, बल्कि अपने बाकी सभी टिड्डों को भी खो बैठोगे ।

शेर का साम्राज्य

जंगल के जीव-जन्तुओं का राजा एक सिंह था । वह क्रोधी, क्रूर या निरंकुश नहीं था, बल्कि वह एक आदर्श राजा के समान सुशील तथा न्यायवादी था । एक बार उसने मुनादी पिटवाकर समस्त पशु-पक्षियों की एक सभा बुलाई । इस सभा में एक सार्वजनिक संघ के लिये नियम निर्धारित करने थे, जिसमें भेड़िया और मेमना, चीता और बकरी, बाघ और हिरन, कुत्ता और खरगोश – सभी जीव हार्दिक मित्रता तथा पूरी शान्ति के साथ मिल-जुलकर रह सकेंगे ।

सभा के दौरान खरगोश बोला, "अहा! मैं तो इसी दिन का इन्तजार कर रहा था, जब दुर्बल जन्तु भी सुरक्षित रूप से बलवानों के साथ मिलना-जुलना कर सकेंगे ।" इतना कहकर वह अपनी जान बचाने को दौड़ पड़ा ।

केवल नियम बनाने से ही छोटे जन्तुओं को बलवानों के साथ समानता का दर्जा नहीं मिल सकता ।

मछुवारे का बाँसुरी वादन

एक मछुवारा संगीत में कुशल था । वह अपनी बाँसुरी तथा जाल लेकर समुद्र के किनारे जा पहुँचा । उसने पानी में अपना जाल फैला दिया और स्वयं तट पर स्थित एक चट्टान पर खड़े होकर उसने बाँसुरी बजाना आरम्भ किया । उसे आशा थी कि उसका मधुर संगीत सुनकर मछलियाँ आ जायेंगी और नाचती हुई उसके जाल में प्रविष्ट हो जायेंगी । काफी देर तक प्रयास करने के बाद उसने अपनी बाँसुरी किनारे रख दी और जाल को उठाकर समुद्र में फेंका । यह देखकर उसके आनन्द का ठिकाना न रहा कि जाल में बहुत-सी मछलियाँ फँसी हुई हैं । जाल को खींचकर चट्टान पर लाने के बाद उन्हें उछलती हुई देखकर वह बोला, "दुष्ट मछलियो, मेरे बाँसुरी बजाने पर तुम नहीं नाची, परन्तु अब मेरे हाथ में आ जाने के बाद तुम नाच रही हो ।"

❖ (क्रमशः) ❖

मायावती में स्वामी विवेकानन्द : दैनन्दिन विवरणिका

ब्रह्मचारी अमल

(स्वामी विवेकानन्द का हिमालय से प्रगाढ़ प्रेम था । उनकी बड़ी तीव्र आकांक्षा थी कि हिमालय की ही किसी गुफा में ब्रह्म-चिन्तन करते हुए अपना पूरा जीवन निकाल दें । परिव्राजक के रूप में कुमाऊ तथा गढ़वाल मे उनकी यह इच्छा आंशिक रूप से पूर्ण हुई थी । 'प्रबुद्ध भारत' नामक अंग्रेजी मासिक के लिए उन्होंने अपने अंग्रेज शिष्यों को हिमालय मे एक आश्रम बनाने का आदेश दिया और परिस्थिति-वश उन्हें भी इस आश्रम में आकर कुछ काल यापन करना पड़ा था । उनके मायावती-निवास का यह लेखा 'प्रबुद्ध-भारत' के सितम्बर १९६३ अंक में प्रकाशित हुआ था, जहाँ से 'विवेक-ज्योति' के लिए नारायणपुर, रामकृष्ण मिशन के श्री केशव चन्द्राकर ने इसका हिन्दी अनुवाद किया है । – सं.)

जनवरी १९०१ में स्वामी विवेकानन्द हिमालय के मायावती में स्थित अद्वैत आश्रम में पधारे । यद्यपि उनकी यह यात्रा संक्षिप्त तथा किसी विशेष घटना से रहित थी, तथापि रामकृष्ण-भावधारा के जुड़े भक्तों तथा अध्येताओं के लिए एक रुचिकर विषय है । स्वामी विवेकानन्द ने सम्पूर्ण भारत तथा विश्व भर में काफी यात्राएँ की थीं, परन्तु हिमालय के लिए उनके मन में सर्वदा ही एक विशेष रुझान था । उनकी एक विशेष परिकल्पना थी कि वे वृद्धावस्था में काम-काज छोड़कर हिमालय में चले जायेंगे और वहीं ध्यान में तल्लीन रहा करेंगे ।

इसके बावजूद अपनी मातृभूमि के गौरव की पुनर्प्रतिष्ठा हेतु कार्य करना तथा एक आन्दोलन खड़ा करना उनके जीवन का उद्देश्य था । वे बताते थे कि उन्होंने कई बार सब छोड़कर हिमालय में जाने का प्रयास किया, परन्तु मानो किसी अदृश्य शक्ति उन्हें हर बार बाहर खींच लाई । तथापि नगाधिराज के प्रति तीव्र लगाव सर्वदा ही उनके अन्तर्मन में बना रहता था ।

स्वामीजी जब कैप्टेन तथा श्रीमती सेवियर के साथ स्विट्जरलैंड के आल्प्स पर्वतों में भ्रमण कर रहे थे, तभी १८९६ ई. में एक दिन उनका यह सपना पहली बार अभिव्यक्त हुआ । वहाँ की दृश्यावली और निवासियों ने उन्हें बड़ी तीव्रता से हिमालय का स्मरण करा दिया और वे अपने संगियों के समक्ष अपने भाव व्यक्त करने लगे । उन्होने बताया कि वे हिमालय में एक आश्रम स्थापित करना चाहते हैं, जहाँ वे अपने कार्यों से मुक्त होकर ध्यानमय जीवन बिता सकें । यह एक ऐसा स्थान होगा, जहाँ उनके भारतीय तथा पाश्चात्य शिष्यगण साथ साथ रहते हुए कार्य कर सकेंगे । कैप्टेन तथा श्रीमती सेवियर उनके ये विचार सुनकर मुग्ध हो गये और बाद में उन्होंने ऐसा ही एक मठ बनाने का बीड़ा उठाया । वे स्वामीजी के साथ भारत आये और आश्रम के लिए एक अच्छे भूखण्ड की खोज करने लगे । उन्होंने कुछ समय अल्मोड़ा में बिताकर देखा, पर वहाँ उनकी इच्छानुरूप निर्जनता नही थी । स्वयं स्वामीजी ने भी अपनी यात्राओ के दौरान ऐसे उपयुक्त स्थान को ढूँढ़ने का प्रयास किया, मगर वे भी सफल नही हुए । आखिरकार अपनी कश्मीर-यात्रा के दौरान उन्होंने यह मामला पूरी तौर से सेवियर-दम्पति के हाथों मे छोड़ दिया और वे लोग स्वामी स्वरूपानन्द के सहयोग से अल्मोड़ा जिले के दूर-दराज के अंचल में इसके लिए खोज करने लगे । काफी तलाश के बाद उन्हें मायावती के टी-एस्टेट की सूचना मिली और उन्हें तत्काल लगा कि यही आश्रम के लिए सर्वश्रेष्ठ स्थान होगा । यह जगह पहाड़ियों तथा वनों से विभूषित निर्जन में स्थित था और वहाँ से मनोहारी हिमशिखरों का अबाध दर्शन होता था ।

खरीदने का कार्य पूरा हो जाने पर १९ मार्च, १८९८ ई. को वे लोग मायावती आ गये । यहाँ एक छापाखाना लगाया गया और 'प्रबुद्ध-भारत', जो कुछ समय मद्रास तथा अल्मोड़ा से निकलता था, अब यहीं से सम्पादित तथा प्रकाशित होने लगा । स्वामीजी अपने सुदीर्घ-पालित स्वप्न को चरितार्थ होते देखकर परम आनन्दित थे । १८९९ ई. के मार्च में उन्होंने आश्रम की परिचय-पुस्तिका में शामिल करने हेतु एक छोटा-सा लेख लिखा, जिनमें उन्होंने स्पष्ट रूप से अद्वैत आश्रम के बारे में अपने विचार प्रकट किये थे –

"यह विश्व जिसमें अवस्थित है, जो विश्व में विराजित है, जो स्वयं विश्वरूप हैं; जिसमें आत्मा है, जो आत्मा में है, जो स्वयं मनुष्य की आत्मा है; उसका – और इसीलिए इस विश्व का – अपनी आत्मा के रूप में ज्ञान ही समस्त भय तथा क्लेश का अन्त करता है और अनन्त मुक्ति की उपलब्धि कराता है ।

"व्यक्तियों के जीवन के उदात्त और मनुष्य जाति को सम्प्रेरित करने के अभियान में इस सत्य को अधिक मुक्त और अधिक पूर्ण अवसर प्रदान करने के उद्देश्य से हम इसकी आदि स्फुरण-भूमि, हिमालय के शिखरों पर इस अद्वैत आश्रम की स्थापना कर रहे हैं ।

"आशा है कि यहाँ अद्वैत दर्शन को समस्त अन्धविश्वासों और दुर्बलताजनक दूषणों के संस्पर्श से मुक्त रखा जा सकेगा । यहाँ एकमात्र शुद्ध सरल एकत्व सिद्धान्त के अतिरिक्त और कुछ नही सिखाया जायेगा, न व्यवहार में लाया जायेगा और अन्य सभी दर्शनों के साथ हमारी पूर्ण सहानुभूति होते हुए भी यह आश्रम अद्वैत, केवल अद्वैत के लिये ही समर्पित है ।"[१]

कई संन्यासी कर्मी इस आश्रम में भेजे गये और नियमित कार्य शुरू हुआ । तीन महीने बाद स्वामीजी पश्चिम की अपनी दूसरी यात्रा पर चल पड़े और १९०० ई. के दिसम्बर में वे भारत लौटे । उस समय वे थके हुए तथा अस्वस्थ थे और उनका चित्त अधिकाधिक जागतिक विषयों से ऊपर उठता जा

१. विवेकानन्द साहित्य, खण्ड ९, पृ. ३१८

रहा था । जब वे यूरोप में थे, तभी उन्हें कैप्टेन सेवियर की मृत्यु का पूर्वाभास हुआ । ९ दिसम्बर, १९०० को बेलूड़ मठ पहुँचने पर इस बात की पुष्टि हुई । २८ अक्तूबर को उनके परमप्रिय शिष्य कैप्टेन सेवियर का देहावसान हो चुका था । स्वामीजी ने तत्काल मायावती जाने का निर्णय लिया और तार के द्वारा इसकी सूचना श्रीमती सेवियर को भेज दी ।

उसी माह के अन्त में उन्होंने बेलूड़ मठ से प्रस्थान किया और २९ दिसम्बर को काठगोदाम पहुँचे । साल का वह काफी खराब समय था और भारी हिमपात के साथ कड़ाके की सर्दी पड़ रही थी । मायावती की यात्रा करते हुए इस यात्रीदल को घोर कष्ट झेलने पड़े, परन्तु आखिरकार वे गुरुवार, ३ जनवरी, १९०१ को मायावती जा पहुँचे ।

कई स्रोतो से हमें उनके इस प्रवास के विवरण प्राप्त होते हैं । स्वामी स्वरूपानन्द ने एक छोटी-सी डायरी रखी थी, जो दिन-प्रतिदिन की घटनाओं की एक रूपरेखा प्रदान करती है । स्वामीजी ने वहाँ अपने निवास के दौरान कई पत्र तथा लेख लिखे थे और वे विवेकानन्द-साहित्य में प्रकाशित हुए हैं । कुछ और जानकारी उनके 'प्राच्य तथा पाश्चात्य शिष्यों' द्वारा अंग्रेजी में लिखित 'स्वामी विवेकानन्द की जीवनी' में मिलती है । स्वामी श्रद्धानन्द द्वारा लिखित 'अतीतेर स्मृति' नामक बँगला ग्रंथ में कुछ और भी विवरण प्राप्त होते हैं ।

इस लेख के अगले चरण में हम सर्वप्रथम स्वामी स्वरूपानन्द की दैनन्दिनी से स्वामीजी से सम्बन्धित बातें उद्धृत करेंगे । यह अत्यन्त संक्षिप्त होगा और इसके वाक्य प्राय: तार के सन्देश के समान छोटे हैं । दैनन्दिनी के अभिलेख के उपरान्त हम उस दिन की घटनाओं के विषय में प्राप्त होनेवाली अन्य जानकारियाँ देंगे, जिनमें उनके उपलब्ध पत्रों तथा लेखों से सविस्तार उद्धरण भी दिये जायेंगे ।

शुरुआत करने के पहले हम थोड़ा उन लोगों के विषय में जानकारी देते हैं, जो उन दिनों मायावती में निवास कर रहे थे । स्वामीजी की जीवनी से हमें ज्ञात होता है कि आश्रम की स्थापना के तत्काल बाद ही उन्होंने चार संन्यासी कर्मियों को मायावती भेजा था । इनके नाम थे – (१) स्वामी सच्चिदानन्द (बड़े), जो बुड़ो बाबा के नाम से भी परिचित थे, (२) स्वामी विरजानन्द, जो बाद में रामकृष्ण मठ और मिशन के परमाध्यक्ष बने, (३) स्वामी विमलात्मानन्द और (४) ब्रह्मचारी हरेन्द्रनाथ । दैनन्दिनी के अभिलेखों में हरेन्द्रनाथ का नाम नहीं है, अत: सम्भव है कि स्वामीजी के आगमन के समय वे वहाँ उपस्थित न रहे हों । उनके अतिरिक्त न्यूयार्क से चार्ल्स जॉनसन नामक एक तरुण अमेरिकी मायावती-वास के लिए आये हुए थे । उन्होंने ब्रह्मचर्य-व्रत ग्रहण किया था और ब्रह्मचारी अमृतानन्द के नाम से परिचित थे ।

अब हम डायरी अभिलेखों की प्रस्तुति आरम्भ कर सकते हैं । (कहीं कहीं खाली स्थान अपाठ्यता के कारण हैं ।) –

जनवरी ३, १९०१ : "सुबह का तापमान ४० डिग्री । हम लोगों का दोपहर का भोजन हो चुका था । १२ बजे के बाद और एक बजे के पहले, गोविन्द लाल साह (...) के साथ स्वामीजी का प्रथम पदार्पण हुआ । वे काफी थके दिखाई दे रहे थे । इसके बाद स्वामी विरजानन्द प्रकट हुए और बड़ी देर बाद स्वामी शिवानन्द तथा स्वामी सदानन्द पहुँचे । रास्ते में स्वामी सदानन्द तथा गोविन्द लाल टोली से अलग होकर उसी शाम (३१ तारीख) मौरनाला पहुँच गये और बाकी लोगों को, धारी तथा मौरनाला के बीच हिमझंझा में फँस जाने के कारण एक दुकान में आश्रय लेना पड़ा था । सुबह मुख्य टोली मौरनाला पहुँची और सभी ने पूरा दिन तथा रात वहीं बिताया ।"

स्वामी विवेकानन्द की जीवनी (प्रथम आंग्ल संस्करण) में लिखा है – "अगले दिन स्वामीजी मायावती पहुँचे । सामने की पहाड़ी से आश्रम के भूखण्ड तथा भवनों की झलक पाकर वे बड़े आनन्दित हुए । नीचे की घाटी में झरने के पास पहुँचने पर उन्हें आश्रम में बारह बजे लगनेवाली घण्टी सुनाई दी और वे आश्रम पहुँचने के लिए इतने उत्कण्ठित हो उठे कि एक घोड़े पर सवार होकर उन्होंने उसे एड़ लगायी । संघनेता तथा सम्माननीय गुरु के आगमन-रूप इस महान् अवसर पर सबने आश्रम को कलात्मक ढंग से सजाया गया था । इस मंगलमय तथा पुनीत घटना के प्रतीक-रूप में मुख्य द्वार पर सदाबहार पर्णों तथा फूलों के साथ जल से भरे कलश रखे गये थे । कहना न होगा कि लम्बे अन्तराल के बाद स्वामीजी से मिलकर आश्रमवासी शिष्यों के आनन्द की सीमा न रही ।"

स्वामीजी के साथ इस भेंट से शिष्यगण हर्षविभोर थे और वे हर प्रकार से उनकी सेवा करने में एक दूसरे से होड़ कर रहे थे । यह प्राच्य तथा पाश्चात्य आदर्शों के मतभेद का एक सम्भावित क्षेत्र है । भारत में अपने से बड़ों और विशेषकर अपने गुरु के समक्ष अवनत होकर तथा सेवा की साधारण क्रियाओं के द्वारा उनके प्रति सम्मान व्यक्त किया जाता है । परन्तु पश्चिम, और विशेषकर अमेरिका के प्रोटेस्टेन्ट लोग आत्मश्विास तथा आत्मज्ञापन में विश्वास करते हैं और महापुरुषों के प्रति किसी भी प्रकार का तड़क-भड़क से युक्त श्रद्धाज्ञापन उन्हें गँवारा नहीं है । वे सोचते हैं कि 'सभी लोग जन्म से समान हैं ।' दोनों ही आदर्श अपने अपने स्थान तथा पृष्ठभूमि में सत्य तथा उत्तम हैं, परन्तु दोनों के बीच गलतफहमी होने की भी काफी सम्भावना है । अत: अपने मायावती पहुँचने के पहले दिन ही स्वामीजी जी ने अपने अमेरिकी शिष्य अमृतानन्द को भारतीय आदर्श समझाने का प्रयास किया । वे बोले – "देखो, ये लोग मेरी कैसी सेवा कर रहे हैं! एक पाश्चात्य और

विशेषकर एक अमेरिकी को यह दासत्व प्रतीत होगा और जिस प्रकार मैं बिना किसी प्रतिवाद के इन सेवाओं को स्वीकार कर रहा हूँ, इससे शायद तुम्हारे मन को सदमा पहुँचेगा। परन्तु तुम्हें भारतीय भाव को समझना होगा और तब सारी बातें तुम्हारे लिए स्पष्ट हो जायेंगी। यह शिष्य की उन गुरु के प्रति नैसर्गिक भक्ति है, जो केवल उसके मनोभाव को देखते हैं। शिष्य के लिए आध्यात्मिकता की उपलब्धि का यह भी एक उपाय है।''

४ जनवरी, १९०१ : ''सुबह का तापमान ४० डिग्री। स्वामीजी प्रात:काल लोहाघाट की सीमा तक टहलने गये और घोड़े पर सवार होकर लौटे। हमारे लौटते समय ओले पड़ने लगे और रुक रुक कर सारे दिन बर्फ गिरती रही। लगभग छह इंच बर्फ गिरी। संध्या को हिमपात रुक गया।''

५ जनवरी, १९०१ : ''सुबह का तापमान ३६ डिग्री। प्रात:काल स्वच्छ, परन्तु बर्फाच्छादित था। टहलने के लिए बाहर निकलना नहीं हो सका। स्वामीजी स्वस्थ हैं।''

इस दिन स्वामीजी ने स्वरूपानन्द को अपने उन विचारों और कार्यों से अवगत कराया, जिन्हें वे इस आश्रम के द्वारा क्रियान्वित करना चाहते थे। इसके लिए उन्होंने उनसे अत्यन्त उत्साह तथा निष्ठा के साथ काम करने का आग्रह किया। स्वरूपानन्द ने उत्तर दिया कि उनसे जो कुछ भी सम्भव होगा, वे अवश्य करेंगे, परन्तु कार्य की सफलता के लिए अन्य लोगों का सहयोग भी आवश्यक होगा और उन्हें कम-से-कम तीन वर्ष तक वही ठहरने की स्वीकृति देनी होगी। तदनुसार, सबके एकत्र हो जाने पर स्वामीजी ने उनके समक्ष यह विषय उठाकर प्रत्येक से अलग अलग पूछा कि क्या वे मायावती में रहकर कार्य करने को राजी हैं। स्वामी विरजानन्द के अतिरिक्त बाकी सभी लोगों ने हामी भरी। उन्होंने (विरजानन्द) भिक्षाटन करते हुए तपस्यापूर्वक एक विशुद्ध ध्यान-धारणा का जीवन बिताने की इच्छा प्रकट की। स्वामीजी ने उन्हें इससे विरत करने का प्रयास किया।

वे बोले – ''हमारे अनुभवों से सीखो और तपस्या के द्वारा अपने स्वास्थ्य को चौपट मत करो। हम लोगों ने शरीर को व्यर्थ ही कष्ट दिया। उसका फल क्या हुआ? जीवन का जो सबसे अच्छा समय था, उसी समय शरीर टूट गया और आज तक हम उसी के फलस्वरूप तकलीफ पा रहे हैं। फिर काफी समय तक ध्यान-धारणा की क्या कहते हो? यदि पाँच मिनट भी और पाँच क्यों, एक मिनट के लिए भी मन को एक विषय पर एकाग्र कर सको, तो वही यथेष्ट है। और इसे करने के लिए प्रतिदिन सुबह-शाम एक समय निश्चित करके अभ्यास करना होगा। बाकी समय पढ़ने-लिखने या जनसाधारण के लिए हितकर किसी कार्य में लगाते रहना। मैं चाहता हूँ कि मेरे शिष्य शारीरिक तप के स्थान पर कर्म की ओर ही अधिक ध्यान दें। कर्म और है ही क्या? यह भी तो साधना और तपस्या का ही एक अंग है।''

बड़ी लम्बी चर्चा हुई। स्वामीजी ने बाद में स्वीकार किया, ''सच पूछो तो कालीकृष्ण (विरजानन्द) जो कह रहा है, वही ठीक है। उसका भाव मैं समझ गया हूँ। ध्यान-धारणा और स्वाधीनता – इन्हीं में संन्यास जीवन का प्रधान गौरव है।'' वैसे बाद में पूछे जाने पर विरजानन्द ने अपने गुरुदेव के समक्ष समर्पण तथा उनके आदेशों का पालन करना ही उत्तम माना।

६ जनवरी, १९०१ : ''सुबह का तापमान ४० डिग्री। दिन खुला था। ठण्ढ के कारण बर्फ कठोर हो गया था। चम्पावत से अनेक लोग आये। स्वामीजी स्वस्थ रहे। सुबह तथा शाम को काफी दूर तक टहलने गये।''

इस दिन स्वामीजी ने श्रीमती ओली बुल के नाम एक पत्र लिखा, जिसमें उन्होंने मायावती के सम्बन्ध में एक रोचक तथा प्रशंसात्मक विवरण दिया है। इसके कुछ अंश इस प्रकार हैं –

''प्रिय धीरामाता,

''श्रीमती सेवियर बहुत ही दृढ़ संकल्पशालिनी महिला हैं तथा उन्होंने अत्यन्त शान्ति तथा सबल चित्त से इस शोक को सहन किया है। आगामी अप्रैल में वे इंग्लैण्ड जा रही हैं। ...

''यह स्थान अत्यन्त सुन्दर है और इन लोगों ने इसे और भी मनोरम बनाया है। कई एकड़ में फैले इस विशाल स्थान को यत्नपूर्वक रखा गया है। मुझे आशा है कि श्रीमती सेवियर भविष्य में भी इसकी देखभाल कर सकेंगी। वैसे उनकी तो सदा से ही ऐसी आशा रही है। ... यहाँ पर खूब बर्फ पड़ रही है और मार्ग में मैं प्रबल हिमझंझा में पड़ गया था; परन्तु ठण्ड ज्यादा नहीं है। यहाँ आते समय मार्ग में दो दिन ठण्ड लगने से, लगता है मुझे बड़ा लाभ हुआ है। आज मैंने श्रीमती सेवियर की जमीन को देखते हुए बरफ के ऊपर लगभग एक मील चढ़ाई की। सेवियर ने हर जगह बड़े सुन्दर रास्ते बनवाये हैं। अनेक उद्यान, खेत, बगीचे और विशाल वन – सब कुछ उनकी जमीन में है। रहने के कमरे अत्यन्त सादे, स्वच्छ, सुन्दर और सर्वोपरि आवश्यकता के अनुरूप हैं।

''यहाँ के सभी लोगों का स्नेह लेना।

भवदीय चिर-स्नेहाबद्ध सन्तान,

विवेकानन्द

''पुनश्च: – काली-माँ दो बलि ग्रहण कर चुकी हैं; उद्देश्य-साधन में दो यूरोपीय शहीदो ने आत्मोत्सर्ग किया है – अब कार्य सुन्दर रूप से अग्रसर होता रहेगा। ...

''चारों ओर छह इंच गहरी बर्फ फैली हुई है; चमकीली और मधुर धूप निकली हुई है और इस समय दोपहर में हम

लोग बाहर बैठकर पढ़ रहे हैं। हमारे चारों ओर बरफ-ही-बरफ है! हिमपात के बावजूद यहाँ का जाड़ा काफी मृदु है। वायु शुष्क तथा स्निग्ध है और जल की तो बात ही क्या!''

७ जनवरी, १९०१ : ''सुबह का तापमान ४० डिग्री। दोपहर के पूर्व आकाश स्वच्छ। सबेरे स्वामीजी, बुड़ो बाबा, शिवानन्द, माँ (श्रीमती सेवियर) और मैं धरमगढ़ तक जाकर लौट आए। स्वामीजी ने यह अभियान भलीभाँति पूरा किया। वे वहाँ पर एक कुटिया बनाना चाहते हैं। तीसरे पहर मेघ घिर आये। शाम को स्वामीजी ने थोड़ी अस्वस्थता महसूस की।''

स्वामीजी की जीवनी धरमगढ़ पहाड़ी पर भ्रमण के विषय में और भी जानकारी देती है, ''मायावती के निकट के पहाड़ों में धरमगढ़ सबसे ऊँचा है और वहाँ से हिमालय के तुषारशृंगों का सबसे सुन्दर प्राप्त दर्शन होता है। अपने आगमन के कुछ काल बाद स्वामीजी ने आश्रम के अन्तेवासियों के साथ एक सुबह वहाँ बितायी। वे उस स्थान तथा वहाँ की मनोहर दृश्यावली पर अत्यन्त मुग्ध थे और बोले कि उसी स्थान पर वे एक कुटिया बनाना चाहते हैं, जहाँ के अबाध निर्जन में वे ध्यान-तन्मय रह सके।''

यहाँ एक अन्य घटना का भी उल्लेख किया जा सकता है, वैसे इसका ठीक दिन तथा स्थान अज्ञात है। स्वामीजी की इच्छा थी कि मायावती का आश्रम केवल अद्वैत को समर्पित होगा, जैसा कि हमने इसकी परिचय-पुस्तिका के लिए लिखित उनके लेख के उद्धृत अंशों में देखा। वहाँ किसी भी प्रकार की द्वैतवादी पूजा तथा साधना की शुरुआत नहीं होनी चाहिए थी। तथापि मायावती पहुँचकर स्वामीजी ने देखा कि वहाँ एक कमरे को पूजागृह के रूप में रख छोड़ा गया है और उसमें पुष्प, धूप, दीप तथा अन्य उपचारों के साथ नियमित पूजा चल रही थी। ''उस समय तो उन्होंने कुछ नहीं कहा, परन्तु उसी संध्या को जब सभी लोग अलाव के समीप एकत्र हुए, तब उन्होंने बड़े आवेगपूर्वक अद्वैत आश्रम में होनेवाले आनुष्ठानिक पूजा की भर्त्सना करते हुए कहा कि ऐसा कदापि नहीं होना चाहिए था। यहाँ व्यक्तिगत ध्यान, व्यक्तिगत या सामूहिक रूप से शास्त्रों का अध्ययन और हर प्रकार के द्वैतवादी दुर्बलता या निर्भरता से मुक्त सर्वोच्च प्रकार के आध्यात्मिक अद्वैतवाद की शिक्षा तथा अभ्यास जैसे धर्म के आत्मपरक तत्त्वों पर ध्यान दिया जाना चाहिए था। ... यद्यपि स्वामीजी ने उन्हें अवगत करा दिया कि वहाँ आनुष्टानिक पूजा आरम्भ किये जाने पर उन्हे कितनी मर्मान्तक पीड़ा हुई, तथापि उन्होंने तत्काल ही उन लोगों से पूजाघर उठा देने का आदेश नही दिया। इसके लिए जिम्मेदार लोगों की भावनाओं को कहीं आघात न पहुँचे, इसलिए उन्होंने तत्काल कोई कदम नहीं उठाया। ऐसा करना उनके अधिकार का प्रयोग होता। परन्तु वे चाहते थे कि वे लोग स्वयं अपनी भूल समझकर उत्तरोत्तर विकसित हों। इस विषय में स्वामीजी के अदम्य दृष्टिकोण से उनके दो अद्वैतवादी शिष्य – स्वामी स्वरूपानन्द तथा श्रीमती सेवियर भी सहमत थे, ... जिसके फलस्वरूप पूजा बन्द हो गयी और अन्ततः मन्दिर भी उठा दिया गया।''

८ जनवरी, १९०१ : ''सबेरे का तापमान ४० डिग्री। स्वामीजी बाहर नहीं गये। करीब ३ बजे हिमपात होने लगा। तापमान ३८ डिग्री। शाम को बर्फ गिरना बन्द हुआ। रात के पूर्वार्ध में स्वामीजी ठीक से नहीं सो सके।''

९ जनवरी, १९०१ : ''सबेरे का तापमान ३८ डिग्री। आकाश मेघाच्छन्न। बर्फ पिघला नहीं था। ठण्ढ नहीं थी। श्रीयुत बेडन[२] और चिड़ापानी बाबू (पंडित काशीराम) माँ[३] के निमंत्रण पर दोपहर बाद स्वामीजी से मिलने आये और रात को ठहर गये। सुबह स्वामीजी, माँ, मैं तथा बुड़ो बाबा बँगले[४] तक टहलने गये। संध्या को स्वामीजी बाहर नहीं गये। शाम को माँ, बुड़ो बाबा और मैं लोहघाट मार्ग पर गये।''

१० जनवरी, १९०१ : ''सबेरे का तापक्रम ३८ डिग्री। आकाश मेघरहित। बर्फ की भव्य दृश्यावली ...। अपराह्न तथा शाम को स्वामीजी ने 'प्रबुद्ध-भारत' के लिए तमिलों के विषय में एक लेख लिखा, जिसे पढ़कर उन्होंने हम लोगों को सुनाया। स्वामीजी बैठके में ही सोए।''

'विवेकानन्द साहित्य' के खण्ड-९ में संकलित स्वामीजी का 'आर्य और तमिल' शीर्षक लेख नृजाति-विज्ञान तथा भारत की सामाजिक संरचना के विषय में एक रोचक अध्ययन है। इसमें उन्होने बताया है कि लगभग सभी ज्ञात जातियों तथा राष्ट्रों ने सामाजिक विकास के प्रत्येक स्तर के साथ भारत के निर्माण में योगदान किया है और ''आर्य तथा तमिल शब्दों का चाहे जो कुछ भी भाषा-शास्त्रीय महत्त्व हो, और यदि हम यह भी स्वीकार कर लें कि भारतीय मानव-समाज के ये दो महान् उपभेद पश्चिमी सीमान्त के परे कहीं से आये थे, फिर भी तथ्य यह है कि इन दोनों के बीच की विभाजक रेखा प्राचीनतम काल से भाषा ही रही है, रक्त नहीं।''

११ जनवरी, १९०१ : ''सबेरे का तापक्रम ३८ डिग्री। बड़ा सुहावना दिन। स्वामीजी पूरे स्वस्थ नहीं है।''

१२ जनवरी, १९०१ : ''सबेरे का तापक्रम ४० डिग्री। दोपहर में ५० डिग्री। स्वामीजी अच्छा महसूस कर रहे हैं, टहलने को बाहर आये। बद्रीशाह की सूर्यघड़ी का समय मिलाया, जिसे उन्होंने हम लोगों के दे दिया। विरजानन्द ने आइसक्रीम बनाया। शाम को स्वामीजी अस्वस्थ महसूस कर

२. बंगाल के एक स्वर्गीय लेफ्टिनेन्ट गवर्नर के पुत्र।
३. श्रीमती सेवियर को 'माँ' कहकर पुकारा जाता था।
४. श्रीमती सेवियर के निवास को 'माँ का बँगला' कहा जाता है।

रहे थे, तथापि उन्होंने कुछ गाया । शिवानन्द ने भी गाया । स्वामीजी ने अनिद्रा में रात बिताई । रात में तेज हवा चली ।''

आइसक्रीम स्वामीजी को बड़ी प्रिय थी, अत: उसे परोसना ही उनका विशेष सत्कार था । ''स्वामी विरजानन्द के प्रयास से १२ तारीख को आइसक्रीम का भोज हुआ । उन्होंने इस मौसम के दौरान झील पर जमनेवाली बर्फ की मोटी परत की सहायता से आइसक्रीम का एक बड़ा तथा स्वादिष्ट लौदा जमाया । स्वामीजी अपनी यह प्रिय वस्तु पाकर प्रसन्न थे ।'' (जीवनी)

१३ जनवरी, १९०१ : ''सबेरे का तापक्रम ४० डिग्री। आँधी, मेघ तथा वर्षा भरा मौसम । पूरे दिन और रात भर रुक रुक कर वर्षा होती रही । ... स्वामीजी स्वस्थ अनुभव कर रहे थे । उनकी रात बड़ी अच्छी तरह गुजरी ।

''स्वामी (विवेकानन्द) जी का जन्मदिन – आज[५] वे ३७ वर्ष के हुए । जब उन्होंने शिकागो धर्ममहासभा में पहली बार भाषण दिया था, तब वे २९ वर्ष के थे ।''

जनवरी १४, १९०१ : सबेरे का तापक्रम ४४ डिग्री । वर्षा हो रही है । स्वामीजी और माँ बेहतर महसूस कर रहे हैं । तूफानी मौसम । लगातार मूसलाधार वर्षा । ... स्वामीजी ने थियॉसफिस्टों के विषय में एक पैराग्राफ लिखा और न्यायाधीश रानाडे द्वारा सामाजिक सम्मेलन में दिये गये भाषण के प्रत्युत्तर में एक लेख लिखना आरम्भ किया, जिसमें संन्यासी को शिक्षक के रूप में प्रस्तुत किया गया था । मेघ गरजे और बिजली चमकी । रात में थोड़ा-सा हिमपात हुआ ।

''पिताजी (कैप्टेन सेवियर) का जन्मदिन । आज वे ५६ वर्ष के होते ।

वैसे स्वामीजी ने ''सत्यनिष्ठ सद्भावना तथा भाषा की शिष्टता के साथ व्यक्त किये गये'' उस भाषण के अधिकांश भाग की प्रशंसा की, परन्तु उन्होंने उसके अन्तिम भाग की आलोचना की, जिसमें स्पष्ट रूप से संन्यासियों की निन्दा करते हुए सर्वमुखी अनुभवों से युक्त (अर्थात् विवाहित) धर्म-शिक्षकों का एक संगठन बनाने की अनुशंसा की गयी थी ।

स्वामीजी ने अपने लेख में इस दृष्टिकोण का प्रतिवाद किया था और संन्यासी की स्थिति का बचाव किया था । उन्होंने बताया कि कैसे वैदिक काल से ही संन्यासियों ने ''आध्यात्मिकता और नैतिकता के उन स्रोतों से'' छककर पान किया । और इसी में से उन्होंने ''अपने आश्चर्यजनक आध्यात्मिक और सामाजिक सुधारों के प्रचार की शक्ति प्राप्त की; और जो आज हमारे समाज-सुधारकों को पश्चिम से तीसरी-चौथी किश्त की जूठन के रूप में मिलने पर भी इतनी शक्ति दे रहे हैं कि वे संन्यासियों की भी आलोचना करते हैं ।''

५. स्पष्टत: यहाँ भूल हुई है । वस्तुत: इस जन्मदिन पर स्वामीजी ३८ वर्ष के हुए थे । जब उन्होंने शिकागो मे भाषण दिया, तब वे तीस वर्ष के थे ।

१५ जनवरी, १९०१ : ''प्रात: का तापक्रम ३८ डिग्री । आकाश स्वच्छ । जमीन पर थोड़ी-सी (बर्फ) । स्वामीजी बहुत अच्छा महसूस कर रहे हैं । सुबह माँ और मैंने जलमार्ग की सफाई की । स्वामीजी झील तक आये ।''

१५ तारीख को स्वामीजी ने श्रीयुत् स्टर्डी को एक पत्र लिखा । कुछ अंश इस प्रकार हैं –

''प्रिय स्टर्डी,

''प्राय: तीन महीने पूर्व कैप्टन सेवियर ने अपना शरीर छोड़ा है । उन लोगों ने इस पर्वत के ऊपर एक सुन्दर आश्रम की स्थापना की है और श्रीमती सेवियर इसको कायम रखना चाहती हैं । मैं यहाँ उनसे मिलने आया हूँ ...।

''श्रीमती स्टर्डी के शरीरान्त के समाचार से मुझे अत्यन्त कष्ट हुआ । वे एक साध्वी पत्नी तथा स्नेहमयी माता थीं; जीवन में इस प्रकार की महिला प्राय: दिखायी नहीं देती ।

''यह जीवन घात-प्रतिघातों से भरा है; पर उस आघात की वेदना जैसे भी हो, दूर हो ही जाती है – इतनी ही सांत्वना है ।

चिर सत्याबद्ध तुम्हारा,

विवेकानन्द

स्वामीजी ने झील के किनारे टहलने का आनन्द लिया । एक दिन श्रीमती सेवियर तथा अन्य शिष्यों के साथ वहाँ टहलते समय उन्होंने अत्यन्त बालसुलभ माधुर्य के साथ कहा, ''अपने जीवन के परवर्ती भाग में मैं सार्वजनिक जीवन का परित्याग कर दूँगा और चाहूँगा कि पुस्तकें लिखते हुए, एक स्वच्छन्द बच्चे की भाँति आनन्द के धुन में इस झील के किनारे सीटी बजाते हुए अपने बाकी दिन व्यतीत करूँ!''

१६ जनवरी, १९०१ : ''प्रात: ३८ डिग्री । मेघाच्छन्न । ठण्ढ ज्यादा है । स्वामीजी की रात अच्छी बीती और वे खूब स्वस्थ अनुभव कर रहे थे । शाम को वे टहलने के लिये माँ के साथ बाहर गये । माँ ने तहसीलदार को लिखा, जिसने शाम को स्वामीजी के लिए अपना घोड़ा भेज दिया था ।''

स्वामीजी की जीवनी कहती है – ''बार बार के हिमपात के कारण उन्हें अधिकांश समय घर के भीतर व्यतीत करना पड़ा । उनकी शारीरिक अवस्था तीव्र ठण्ढक झेल सकने के उपयुक्त नही थी । इस तथ्य ने स्वामी जी को नीचे जाने के लिए अधीर कर दिया । परन्तु समस्या यह थी कि बहुत ऊँची दर पर कुलियों को भुगतान के निर्णय के बाद भी कोई ऐसी दुष्कर यात्रा नहीं करना चाहता था । इस बात से वे और भी विचलित हो गये थे ।''

१७ जनवरी, १९०१ : ''सुबह का तापक्रम ४० डिग्री । आकाश काफी मेघाच्छन्न । स्वामीजी की रात अच्छी नहीं बीती । कुलियों के न आने के कारण झुँझलाहट ।''

मायावती में स्वामीजी की यह आखिरी रात थी । अपने प्रस्थान के पूर्व की संध्या के समय जब अपने शिष्यों के साथ प्रफुल्ल मन से वार्तालाप करते हुए उन्होंने पूछा कि यदि कुली नही मिल सके, तो फिर क्या व्यवस्था होगी? तो विरजानन्द ने आगे बढ़कर कहा, "कोई परवाह नहीं, स्वामीजी, ऐसी दशा में हम लोग स्वयं ही किसी-न-किसी प्रकार आपको ढोकर नीचे ले जायेंगे ।" यह सुनकर स्वामीजी जोरों से हँस पड़े और बोले, "ओह, समझ गया! लगता है तुम लोग मुझे खाई में गिराने का विचार कर रहे हो ।" (जीवनी)

१८ जनवरी, १९०१ : "सबेरे आकाश स्वच्छ दिखा। मैं स्वयं कुली लाने को ६.३० बजे सुबह चीड़ापानी गया, दस कुली मिले और उन्हें लगभग ११.३० भेज दिया । ... साराजू के ऊपर की उत्तरी पहाड़ी पर स्वामीजी तथा उनकी टोली से मिला और उनके साथ डाकबँगले लौट आया । ... रात को डाकबँगले में ठहरे । स्वामीजी आनन्द में थे । शाम को तहसीलदार मिलने आये ।"

डाकबँगला चम्पावत के तहसील-कस्बे में था । स्वामीजी लगभग दोपहर में मायावती से चल पड़े और जैसा कि ऊपर उल्लेख है, मार्ग में उन लोगों की स्वामी स्वरूपानन्द से भेंट हुई । इस टोली ने चम्पावत में रात बिताया और अगले दिन सुबह स्वामीजी ने प्रस्थान किया ।

यही स्वामीजी का एकमात्र मायावती-प्रवास था । संक्षिप्त होने पर भी उनके शिष्यों के हृदय में इसकी स्मृति दीर्घकाल तक बनी रही । मायावती के भावी विकास पर इसका निर्णायक प्रभाव पड़ा । सच है, एक महापुरुष के जीवन की छोटी-मोटी घटनाओं का भी गहन अध्ययन बड़ा फलदायी है । इसी धारणा के साथ हमने स्वामीजी के मायावती-प्रवास का यह सविस्तार विवरण प्रस्तुत किया है ।

स्वामी तुरीयानन्द के उपदेश

(पत्रों से संकलित – अक्तूबर १९९९ अंक से आगे)

— ९८ —

इसमें कोई सन्देह नहीं कि प्रभु की इच्छा ही पूर्ण होती है । वे मंगलमय हैं और सब कुछ मंगलार्थ ही किया करते हैं। परन्तु स्वार्थपरता के कारण हम इसका अनुभव नहीं कर पाते। नहीं तो उनके कार्य में दूसरा कोई भी भाव नहीं होता, वह सदा मंगलमय भाव से ही परिपूर्ण रहता है ।

'मैं प्रभु का हूँ' – ऐसा निश्चय बोध हो जाने पर जीवन सार्थक हो जाता है । फिर वे चाहे जिस अवस्था में भी रखें, कोई अन्तर नहीं पड़ता । ज्ञान पाकर कहीं भी रहने में कोई हानि नहीं । प्रभु की कृपा से आपको बहुत कुछ होश हुआ है। संसार आप लोगों का ज्यादा कुछ नहीं बिगाड़ सकता । उनके अनुगत होकर तथा वे जैसे भी रखें उसी में सन्तुष्ट रहकर जीवन के ये कुछ दिन काट लेना, और क्या! वे हमारे इहलोक तथा परलोक के सर्वस्व हैं । उन्हीं में चित्त स्थिर रखिए, उन्हीं की बाट जोहते रहिए ।

आपका स्वास्थ्य अच्छा नहीं रहता, यह जानकर खेद होता है । ऊपर से परिश्रम भी बहुत करना पड़ता है, तथापि आप उन्हीं के चिन्तन में रत रहते हैं, नि:सन्देह उनकी आपके प्रति विशेष कृपा है । जो जीवन आराम से कट जाता है, पर उनकी ओर दृष्टि नहीं रखता, उसे अच्छा नहीं कहा जा सकता । खूब परिश्रम करते हुए भी उनकी ओर दृष्टि रखनेवाला ही धन्य है।

संतोषं परमास्थाय सुखार्थी संयतो भवेत् ।
संतोषः सुखमूलं हि दुःखमूलं विपर्ययः ।।[१]

लौकिक फल देखकर कार्य का मूल्यांकन करना उचित नहीं, उससे शान्ति भी नहीं मिलती । शान्ति तो केवल प्रभु के इस वाक्य में दृढ़ निश्चय कर पाने पर ही प्राप्त होती है कि वे करुणासिन्धु और विश्व के पालक हैं ।

यथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः।[२]
भोक्तारं यज्ञतपसां सर्वलोकमहेश्वरम्।
सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति ।।[३]

वे सभी प्राणियों का हित करनेवाले हैं, सभी का ठीक-ठीक पालन कर रहे हैं – यही जानने पर शान्ति मिलती है ।

— ९९ —

"मेरे मन, तुम क्यों निरन्तर दुर्गा दुर्गा जपना भूल जाते हो? जीवन में और मृत्यु में सर्वदा माँ के चरण पकड़े रहो ।" प्रभु जो कुछ भी करते हैं सब भले के लिए ही करते है; यही विश्वास वे कृपा करके हृदय में दृढ़ रखें ।

खूब साधन-भजन करो । सभी को सर्वदा अनुकूल परिस्थितियाँ नहीं मिलतीं । अत: वे जिस अवस्था में भी रखें, उसी में रहकर उन्हें पुकारना होगा । क्योंकि उनका निरन्तर स्मरण करते हुए उनके अनुगत होना – इसके अतिरिक्त कल्याण का

१. सुख के अभिलाषी को परम सन्तोष का आश्रय लेकर संयत होना चाहिए, क्योंकि सन्तोष ही सुख का एवं असन्तोष ही दु:ख का मूल है ।
२. वे अनादि काल से सभी प्राणियों के कर्मानुसार सम्पूर्ण पदार्थों की रचना करते आये है । (ईशा., ८)
३. वह मुझे यज्ञ व तप का भोक्ता, सारे लोकों का महान् ईश्वर तथा सर्वभूतों का सुहृद् जानकर शान्ति को प्राप्त होता है । (गीता, ५/२९)

कोई दूसरा रास्ता नहीं है । पूर्ण रूप से उन्हीं के हो जाने पर ही पूर्ण कल्याण की प्राप्ति होती है । यही सिद्धान्त है । युक्ति से भी इसी सिद्धान्त का समर्थन मिलता है और सभी महापुरुष इस सम्बन्ध में एकमत हैं । सभी असुविधाओं के बीच भी उनका स्मरण करते हुए बुद्धिमान लोग सभी असुविधाओं के पार चले जाते हैं ।

इस संसार में प्रभु की कृपा के अतिरिक्त दूसरा कोई सहारा नहीं है । जो इस बात की जितनी ही अधिक उपलब्धि कर सकेगा, वह उतना ही निश्चिन्त हो सकेगा । हम लोगों से दूर हो, इसलिए अपने आपको हमसे दूर न समझ लेना । दूरी और निकटता सब मन से ही है । अत्यन्त दूर रहकर भी अति निकट तथा अति निकट रहकर भी अत्यन्त दूर हुआ जा सकता है! तुम सर्वदा हम लोगों के निकट ही हो ।

मुझे प्रभु कहाँ ले जाएँगे, यह वे ही जानें । वे जहाँ भी ले जाएँ, उनसे यही प्रार्थना है कि वे मेरी मति अपने चरणकमलों में बनाये रखें । प्रभु की इच्छा ही पूर्ण होती है और वह नि:सन्देह कल्याणकारी होती है । परन्तु हमारा मन नहीं समझता, उसे धैर्य नहीं है । इसमें यदि विश्वास हो, तो फिर इससे बढ़कर शान्ति पाने का दूसरा उपाय नहीं है । वे जो भी करते हैं, वह यथार्थ कल्याण के लिए है, यह बुद्धि न होने पर हृदय में शान्ति नहीं मिलती । शरीर रहने पर सुख-दुःख, रोग-शोक आदि होना अवश्यम्भावी है । ये तो आएँगे ही; परन्तु सुख अच्छा है और दुःख बुरा है – यह बुद्धि उचित नहीं । यह महान् स्वार्थपरता है । प्रभु हमें सुख-दुःख, रोग-शोक में भी सदा शान्त रखें । शुभबुद्धि कभी, किसी भी अवस्था में हमारे मन से न जाय – उनसे यही एकमात्र अकपट प्रार्थना है ।

तुम लोग कैसे ब्रह्मचारी हो? शरीर की ओर दृष्टिपात ही क्यों करते हो? शरीर का यह धर्म ही है कि बढ़ेगा, घटेगा, और एक दिन नष्ट हो जाएगा । इस शरीर में ही एक कोई है, जो न कभी बढ़ता है, न घटता है, उसी को देखना ।

प्रभु के श्रीचरणों में तुमने अपने आपको उत्सर्ग किया है, अत: अब सारा भार उन्हीं पर है । वे ही सब कुछ करा लेंगे । उनके हाथ के यंत्रस्वरूप होकर, उन्हीं के निर्दिष्ट पथ पर अपने को परिचालित करो, फिर भय और चिन्ता का अवसर ही नहीं आएगा । उनके शरणागतों को कोई भी भय नहीं है । "हरि से लागि रहो रे भाई । तेरी बनत बनत बनि जाई ।।"

प्रभु अपना कार्य स्वयं करते हैं और कर रहे हैं; तथापि धन्य हैं वे लोग, जिन्हें वे अपने यंत्र के रूप में उपयोग करते हैं । तुम जो विशेष रूप से उनके यंत्र होकर उनका कार्य करने को प्रस्तुत हो, इसी में मुझे असीम आनन्द हो रहा है । पूरे दिल से मैं प्रभु से प्रार्थना करता हूँ कि तुम ऐसे ही दिन-पर-दिन उनके प्रिय कर्म सम्पन्न करके, अपना तथा अन्य सभी का जीवन धन्य करते रहो और परम कल्याण के अधिकारी बनो ।

प्रभु अपना कार्य स्वयं चला लेते हैं । जो इसमें उत्साहपूर्वक अपने को समर्पित कर देते हैं, वे धन्य और कृतकृत्य हो जाते हैं । प्रभु तुम्हें इसी प्रकार अपने कार्य में लगाए रखकर धन्य व कृतार्थ करें , यही मेरी उनसे सर्वतोभावेन प्रार्थना है ।

वे मंगलमय हैं, मंगल ही कर रहे हैं और करेंगे – यही विश्वास दृढ़ रहने पर अन्य किसी भी ओर दृष्टिपात करने की जरूरत नहीं रह जाती । प्रभु यही भाव हमारे हृदय में दृढ़मूल करें । तुम सभी मिलकर मेरे लिए उनसे यही प्रार्थना करना –

नान्या स्पृहा रघुपते हृदयेस्मदीये
सत्यं वदामि च भवानखिलान्तरात्मा ।
भक्तिं प्रयच्छ रघुपुंगव निर्भरां मे
कामादि दोषरहितं कुरु मानसं च ।।[४]

यह प्रार्थना मेरे प्राणों में पूर्ण शान्ति की आशा का संचार कर देती है । यह आयत्त होते ही पूर्णत्व लाभ मानो अति निकट हो जाता है । जीवन में यही भाव दृढ़ हो जाने पर अमरत्व तुच्छ हो जाता है । "जन्म लेने पर मरना ही होगा, कहाँ और कब कोई अमर हुआ है?" इसी भाव को प्राप्त कर निश्चित होने पर ही मृत्यु सार्थक हो जाती है । शरीर के लिए कोई चिन्ता नहीं, ऐसा भाव तभी तो प्राप्त होता है ।

महामाया की करनी समझने का उपाय नहीं । जब –

ज्ञानिनामपि चेतांसि देवी भगवती हि सा ।
बलादाकृष्य मोहाय महामाया प्रयच्छति ।।[५]

तो फिर दूसरे लोगों की बात ही क्या! सर्वदा हाथ जोड़कर प्रार्थनाशील रहने पर ही सुरक्षा है । तुमने ठीक ही लिखा है, इस संसार में 'उपले को जलता देख गोबर हँसता है' – यही भाव दीख पड़ता है । 'माँ, तुम्हारे द्वारा रक्षा न करने पर उपाय नहीं है' – यही ठीक है । प्रभु की जो इच्छा है वही होगा। उनके श्रीचरणों में मन को रख पाने पर, बाह्य चीजों के लिए फिर इतनी चिन्ता की जरूरत नहीं रह जाती । इस सम्बन्ध में उनकी दया ही एकमात्र सहारा है ।

सर्वदा प्रार्थनाशील होना । प्रभु को निरन्तर अपने हृदय की बातें बताते रहना । एकमात्र वे ही अपने हैं – हृदय में यही भाव दृढ़ हो जाने पर, फिर कोई भय-चिन्ता नहीं रह जाती । क्रमश: वे ही सब कुछ समझा देते हैं ❖ (क्रमश:) ❖

---

४. हे रघुकुल-शिरोमणि, आप मुझे निर्भरा भक्ति प्रदान कीजिए तथा मेरे मानस से काम आदि दोषों को दूर कर दीजिए; हे अखिल जगत् के अन्तरात्मा रघुपति, मैं सच कहता हूँ – मेरे हृदय में दूसरी कोई भी स्पृहा नहीं है । (राम-चरित-मानस, सुन्दर काण्ड, २)

५. वे देवी भगवती, महामाया ज्ञानियो तक के चित्त को मोह के द्वारा बलपूर्वक खीच लेती हैं । (देवी-माहात्म्य, १/५५)

सिंधुघाटी तथा तुर्कमेनिस्तान की सभ्यताएँ

लोग तुर्कमेनिस्तान को केवल पहले के सोवियत गणराज्य से अलग हुए एक राष्ट्र के रूप में ही जानते हैं, परन्तु राजधानी दिल्ली में आयोजित एक गोष्ठी में तुर्कमेनिस्तान के इतिहासकारों ने यह रहस्य उजागर किया कि भारत के साथ तुर्कमेनिस्तान का प्राचीन काल से ही जुड़ाव रहा है। तुर्कमेनिस्तान में प्राचीन स्थलों की खुदाई से इस बात के पक्के सबूत मिले हैं कि भारत की प्राचीन सिंधु-घाटी-सभ्यता और तुर्कमेनिस्तान के अल्तिन-देपी सभ्यता के बीच घनिष्ठ सम्बन्ध रहे हैं।

इसके पहले भारत की प्राचीन सिंधु-घाटी-सभ्यता की मुहरें तथा अन्य अवशेष केवल मेसोपोटामिया (इराक) और बहरीन में ही मिले थे। इतिहासकार एम. एदोगदीव ने बताया कि पाँच हजार वर्ष पूर्व कास्य युग में भी तुर्कमेनिस्तान-भारत सम्बन्ध विद्यमान थे।

दक्षिणी तुर्कमेनिस्तान में पुरातात्त्विक खनन में सिंधु-घाटी सभ्यता से मिलती-जुलती चीजें मिली हैं। उन्होंने बताया कि वहाँ के एल्तिन-देपी सभ्यता के स्थलों पर भारत से ले जायी गयी हाथी-दाँत की चीजें तथा पत्थर के मनके भी प्राप्त हुए हैं। एदोगदीव ने बताया कि एल्तिन-देपी कृषक-बस्तियों में ऐसी मुहरें मिली हैं, जो हड़प्पा की मुहरों से साम्य रखती हैं। उन्होंने कहा कि इन साक्ष्यों से स्पष्ट है कि सिंधु-घाटी तथा तुर्कमेनिस्तान की प्राचीन सभ्यता के बीच व्यापारिक तथा सास्कृतिक सम्बन्ध थे। तुर्कमेनिस्तान की कोपेत दाग पहाड़ियों के समीप पाई गयीं प्राचीन वस्तुएँ भारत से ही ले जाई गयी थीं।

इस गोष्ठी में तुर्कमेनिस्तान के प्रसिद्ध इतिहासकार एच. डी. कुर्बानोव ने बताया कि भारत तथा उनके देश के बीच प्राचीन काल से ही जो सम्बन्ध थे, वे बाद में और भी प्रगाढ़ हो गये थे। उन्होंने बताया कि बाद में भारत के कई हिस्सों से लोग सुप्रसिद्ध रेशम-मार्ग से जाकर तुर्कमेनिस्तान के मर्व, नीसा, उरगेंच और सीख्स आदि बड़े शहरों में बस गये थे। कुर्बानोव ने बताया कि भारतीयों ने अस्त्राखान में तीन कारखाने स्थापित किये थे।

भारत के मुलतान, पंजाब और राजपुताना प्रान्तों के लोग बाकू शहर में रहते थे, जो रूप का सबसे बड़ा तेल-उत्पादक क्षेत्र है। बुखारा में तो एक चौथाई लोग भारतीय मूल के थे, जहाँ के लोग कीमती पत्थर, इत्र, पेंट, मलमल और जरी का व्यापार करते थे। इन समुदायों में पेंटर, शिल्पकार और जिल्दसाज प्रमुख थे। इतिहासकारों ने बताया कि खुदाई में इस बात के भी पुख्ता सबूत मिले हैं कि तुर्कमेनिस्तान के प्राचीन मरजियाना शहर में बौद्ध समुदाय के लोग रहते थे।

वहाँ शिलाओं पर सस्कृत भाषा के पुरालेख मिले हैं और मर्व के वैज्ञानिकों ने इस बात की पुष्टि भी की है। उन्होंने बताया कि तुर्कमेनिस्तान के मशहूर कवि और विचारक मगतीगली दौलत मामद आजादी तथा अन्यों की कृतियों में भारतीय सस्कृति और दर्शन की झलक स्पष्ट रूप से देखने को मिलती है। (नवभारत टाईम्स, दिल्ली)

छत्तीसगढ़ की धार्मिक सहिष्णुता

छत्तीसगढ़ में धार्मिक सहिष्णुता की परम्परा हजारों साल पुरानी है। विभिन्न धर्मों, जातियों तथा वर्गों के बीच यहाँ इस विषय में कोई वैमनस्य उत्पन्न नहीं हुआ।

छत्तीसगढ़ पहले दक्षिण कोशल नाम से परिचित था। लगभग चौथी शताब्दी के मध्य में इसकी राजधानी श्रीपुर या सिरपुर थी। यहाँ पर पाये गये पुरातात्त्विक अवशेषों का सूक्ष्म विश्लेषण अभी बाकी है, तथापि अभी तक जो जानकारियाँ मिली हैं, उसके आधार पर ज्ञात होता है कि उन दिनों यहाँ नलवशीय राजा महेन्द्र राज्य करता था। उसका दक्षिण के दिग्विजय पर निकले गुप्तवशीय सम्राट् समुद्रगुप्त से सामना हुआ और उसने समुद्रगुप्त की अधीनता स्वीकार कर ली।

राजा महेन्द्र के काल के विषय में मतभेद है, पर अवशेषों की जाँच-पड़ताल से यह भी पता चलता है कि वहाँ छठवीं शताब्दी के आसपास पाण्डुवशी एक महान् राजा हुए, जिनका नाम महाशिवगुप्त बालार्जुन था। उनके ऐतिहासिक अवशेषों के आधार पर उन्हें महाप्रतापी बताया गया है। सिरपुर को राजधानी बनाकर इन्होंने अनेक विजय-यात्राएँ कीं। इस काल में बालार्जुन की निपुणता तथा विद्वत्ता के कारण सिरपुर की ख्याति दूर दूर तक फैली हुई थी। इन्होंने

दक्षिण कौशल पर लगभग साठ वर्ष तक राज्य किया और अपने राज्यकाल के दौरान सभ्यता तथा सस्कृति के अनेक प्रतिमान स्थापित किये। इतिहासकारों का मत है कि ये राजा धर्म के मामले में काफी उदार थे। वे स्वयं वैष्णव मत के थे, परन्तु उन्होंने शैव मत को अपना लिया था। इतना ही नहीं अपने राज्यकाल में उन्होंने बौद्ध धर्म को फलने-फूलने का पर्याप्त मौका दिया।

सिरपुर की खुदाई से प्राप्त अनेक बौद्ध विहार, भगवान बुद्ध की विशाल प्रतिमाएँ और शिलालेख उस समय की सामाजिक तथा धार्मिक अवस्था पर प्रकाश डालते हुए बताते हैं कि इस काल में शैव, वैष्णव, बौद्ध और जैन धर्म के उपासकों को पूर्ण सरक्षण प्राप्त था। इस बात की पुष्टि सिरपुर के अलावा उसी काल में आरग में बने जैन तीर्थंकरों की अनेक मध्यकालीन मूर्तियों तथा अवशेषों से होती है।

राजाओं द्वारा विविध धर्मों को अनुयायियों के प्रति समभाव के अलावा छत्तीसगढ़ अंचल में कुछ ऐसे भी धार्मिक स्थान हैं, जो शैव तथा वैष्णव – दोनों ही परम्पराओं के लिए समान महत्त्व रखते थे। सारगढ़ तहसील में स्थित बारदुला और लौधिया नामक गाँवों से जो ताम्रपत्र मिले हैं, वे इस बात का संकेत देते हैं कि महाशिवगुप्त बालार्जुन का साम्राज्य बिलासपुर, रायगढ़ तथा उसके पार तक फैला हुआ था। उनके राज्य के दौरान उनकी माता वाटसन ने एक अद्भुत मन्दिर का निर्माण करवाया, जो आज लक्ष्मण-मन्दिर के नाम से परिचित है। वास्तव में यह विष्णु का मन्दिर था और आज जीर्ण अवस्था में है, तथापि पुरातत्त्व-विदों ने इसे भारतीय वास्तुकला की एक अनूठी कृति बताया है। इस मन्दिर में जो शिलालेख लगे हैं, उनका लेखन-कार्य चिंतरतुरंग जी नामक कवि द्वारा किया गया है।

कलचुरियों के शासनकाल में शैव मत का प्रभाव सर्वविदित है, परन्तु बहुत कम लोग जानते हैं कि कलचुरियों की राजधानी रत्नपुर में हजरत मूसा की दरगाह मौजूद है, जो काफी काल से इस्लाम के साथ सहिष्णुता का प्रतीक है। मल्हार के पुरातात्त्विक अवशेषों की जाँच से छत्तीसगढ़ में धर्म-सहिष्णुता के प्रभाव की और अधिक पुष्टि होती है, क्योंकि मल्हार में शिव के विशाल मन्दिरों के साथ साथ बौद्ध विहारों में भी अश्लील मूर्तियों का होना अपने आपमें अयोग्यता है। यह बात और है कि जैसे समूचे भारत से धीरे धीरे बौद्ध धर्म लुप्त होता गया, वैसे ही छत्तीसगढ़ से भी इसका अवसान हुआ, परन्तु अनेक ताम्रपत्रों तथा शिलालेखों में यह पाया गया है कि दक्षिण कोशल के इन राजाओं के दरबार में अनेक धर्मों के विद्वानों को स्थान प्राप्त था।

इसके भी प्रमाण मिले हैं कि यह राज्य दूसरे धर्मों के दर्शन को जानने तथा समझने में भी रुचि लिया करता था। इतना ही नहीं इन राजाओं के दरबार में विभिन्न धर्मों के विद्वानों के बीच खुलकर वाद-विवाद हुआ करते थे और पक्ष-विपक्ष के लोग अपने समर्थन में दार्शनिक तर्क दिया करते थे। ऋषभ-तीर्थ, शक्ति, बिलासपुर के चट्टान पर जो शिलालेख है और मल्हार से कुछ ताम्रपत्र मिले हैं, जिनमें दूसरे धर्मावलम्बियों के राजाओं द्वारा अनेक गाँव दान में दिये जाने का उल्लेख है। (दैनिक नवभारत, रायपुर से)

मिशन के छात्रों की सफलता

केन्द्रीय शिक्षा परिषद द्वारा संचालित इस वर्ष की माध्यमिक परीक्षा में रामकृष्ण मिशन द्वारा सचालित विद्यालयों के छात्रों की सफलता इस प्रकार रही – देवघर विद्यापीठ के ६८ परिक्षार्थियों में से सभी प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हुए। अलाग (अरुणाचल) ७९ में ५९, जमशेदपुर (बिहार) के ५४ में से ४८, नरोत्तमनगर (अरुणा.) के २८ में से २४ और विवेकनगर (त्रिपुरा) के ३६ में से २५ छात्र प्रथम श्रेणी में पास हुए। इसके अतिरिक्त देवघर के ५५, अलाग के १६, जमशेदपुर के १७, नरोत्तमनगर के ८ और विवेकनगर के १८ छात्र विशेष योग्यता (स्टार) के साथ उत्तीर्ण हुए।

मेघालय माध्यमिक शिक्षा परिषद द्वारा सचालित इस वर्ष की माध्यमिक परीक्षा में आदिवासी मेरिट-तालिका में चेरापुजी के रामकृष्ण मिशन विद्यालय के दो छात्रों ने प्रथम और तृतीय स्थान प्राप्त किया।

विहार में अग्निकाण्ड से राहत

पटना के आश्रम के द्वारा दरभगा जिले के साहसपुर तथा चातौना गाँवों में अग्नि से विध्वस्त ६२ परिवारों के बीच ३५७ धोतियाँ, ३४१ साड़ियाँ, ६१४ बच्चों के कपड़े और ४४४० बरतनों का वितरण किया गया।

राजस्थान में सूखा-राहत

रामकृष्ण मिशन के जयपुर केन्द्र ने जोधपुर जिले के जाजीवाल कलाँ ग्राम में चलाये जा रहे मवेशियों के शिविर के ७०४ गायों के लिए ६२ क्विन्टल सूखा चारा, १२९० गट्ठे हरी घास, १२ क्विन्टल साधारण पशुखाद्य, १०० किलो गुड़ आदि की व्यवस्था की। पशुओं को चिकित्सकीय सहायता भी दी गयी। यह कैम्प २४ अगस्त को बन्द कर दिया गया। ❖